SARVDESHIK

MAY-AUG 1936 G. K. U.

ार्वदेशिक
मासिक पत्रिका - सन् १९३६ ई० - २ अङ्क
मई जून , अगस्त ।

मई-जून १९३६

Reg. No. L 2121.

ऋग्वेद

यजुर्वेद

सार्वदेशिक
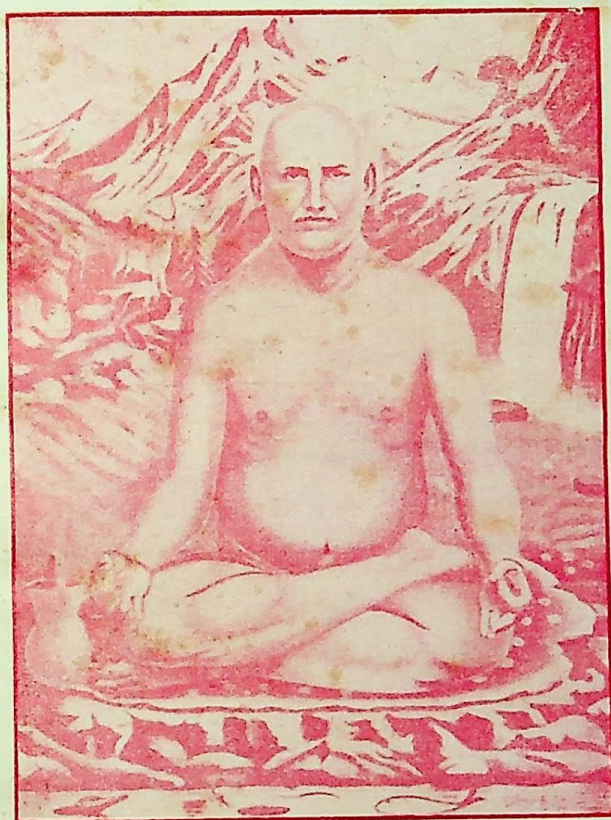
वार्षिक मूल्य २)　　सम्पादक—ला० देशबन्धु　　विदेश से ४ शि　ग

स० सम्पादक—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक　　एक प्रति का ≡)

अथर्ववेद

सामवेद

LIGHT OF TRUTH

या

सत्यार्थ प्रकाश (अंग्रेजी)

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत

इसके विषय में लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। इस एक पुस्तक ने जितनों को आर्य बनाया है उनका शतांश भी अन्य साधनों से नहीं।

अब तक अंग्रेज़ी में इसका सुन्दर तथा सस्ता संस्करण नहीं था। इसी कमी को आर्यसमाज मद्रास ने पूरा कर दिया है।

अजिल्द १॥), सजिल्द २)

THE FOUNTAINHEAD OF RELIGION

या

"धर्मों का मूल स्रोत" (अंग्रेजी)

श्री गङ्गाप्रसाद जी, चीफ़ जज, टेहरी वाले अपनी विद्वता के लिये प्रसिद्ध हैं। यह पुस्तक उन्हीं की गम्भीर लेखनी से निकली हुई है। इसके अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। प्रत्येक अंग्रेज़ी पढ़े युवक व युवती को इसका स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

अजिल्द ॥), सजिल्द १)

The Innerman & Other Lectures on ARYA PHILOSOPHY

अजमेर अर्द्ध-शताब्दी के समय, आर्य-फिलासफ़ी पर दिये गये अंग्रेज़ी व्याख्यानों का संग्रह है।

इनके व्याख्याता श्री पण्डित गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, श्री पण्डित चमूपति जी तथा बाबू गङ्गाप्रसाद जी टेहरीवाले हैं। पुस्तक की भूमिका आचार्य रामदेव जी ने लिखी है।

फैदरवेट पेपर, बढ़िया छपाई।

पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।=) मात्र

THE OUTLINES OF ARYASAMAJ

या

आर्यसमाज का संक्षिप्त परिचय

यह भी पं० केशवदेव जी ज्ञानी की लिखी पुस्तक है। इसमें अंग्रेज़ी पढ़े लिखों को संक्षेप से आर्यसमाज के सब पहलुवों का परिचय कराया है।

मूल्य -)

आर्य साहित्य
अंग्रेज़ी में
लागत दामों पर

आर्यसमाज मद्रास ने केवल मात्र लोकोपकार के भाव से प्रेरित होकर इन पुस्तकों को प्रकाशित किया है। ये पुस्तकें सुन्दर कागज़ तथा बढ़िया छपाई के बावजूद भी निहायत सस्ती हैं। हमें आशा है कि आर्य-समाजें इन्हें अधिक संख्या में मंगा कर हमारा उत्साह बढ़ाएँगी।

पता—

मंत्री, आर्यसमाज,

मद्रास।

The Ten Principles of ARYASAMAJ

या

समाज के दस नियम (अंग्रेज़ी)

श्री पं० चमूपति जी कृत

इसमें योग्य पण्डित जी ने समाज के दस नियमों की वैदिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या की है।

आर्य स्कूलों व कालिजों में उपहार देने के सर्वथा योग्य है।

ऐण्टिक पेपर। सुन्दर छपाई।

पृष्ठ संख्या १६०, मूल्य ।=) मात्र

The Vedic Caste System & PANCHAMA PROBLEM

वैदिक वर्ण व्यवस्था तथा हरिजन समस्या पर श्री पण्डित केशवदेव जी ज्ञानी ने यह समयोपयोगी पुस्तक लिखी है। प्रत्येक आर्य को पढ़नी चाहिए।

मूल्य =) मात्र।

विषय-सूची

पञ्जाब केन्द्रीय अनाथालय रावी रोड लाहौर

(लेखक—श्री लाला बोसा राम जी आनरेरी सेक्रेटरी)

मास अप्रैल के अन्त में ९७ लड़के और ३१ लड़कियाँ थीं। ५६ लड़के प्राईमरी श्रेणियों में; ३ लड़के मिडिल श्रेणियों में, २ लड़के हाई क्लासों में, ८ लड़के दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय में, ४ लड़के दस्तकारी स्कूल में, १ लड़का पं० ठाकुर दत्त Charitable Industries में, १५ लड़के दर्जी क्लास में ८ लड़के अभी छोटे हैं प्रातः व सायं १० लड़कों को हारमोनियम सिखाया जाता है। लड़कियों को शिक्षा देने के अतिरिक्त सीना परोना और घर का काम काज सिखाया जाता है।

यह अनाथालय एक रजिस्टर्ड बाडी के आधीन है। जिस के प्रधान श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द महाराज हैं। यहां पर बच्चों को शिक्षा के अलावा दस्तकारी सिखाई जाती है ताकि वे अपनी आजीविका कमा सकें।

इस अनाथालय में हर प्रकार के बच्चे लिये जाते हैं चाहे वह आर्य जाति के किसी भी फिरके के क्यों न हों, अलावा और बच्चों के आज कल ६ मास का एक बच्चा आया हुआ है। जिस की माता गुजर चुकी है और पिता उसका पालन नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त अब सरकार हमारे पास वह बालक भेजने लग पड़ी है जो कुछ समय से गुम थे। जिन की खोज के लिये सरकार बहादुर ने प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया है। १० वर्ष से १८ वर्ष तक की १६ लड़कियाँ और ५ लड़के आ चुके हैं और ५० बालकों के आने की आशा है। यह बालक अपने बालकपन से चुराये गये थे और यह अपने पते भी नहीं बता सकते। इनके लिये भी मकान की आवश्यकता है। दानी महाशय इस तरफ भी ध्यान दें।

जिन भाइयों ने इस मास सहायता दी है उन का धन्यवाद करते हैं। अनाथालय में मकान की कमी है। दो कमरे नये बनाने शुरू किये थे, वह दानियों की कृपा से बन कर काम में लाये जा रहे हैं अब एक ऐसा कमरा चाहिये जिस में विशेष रोगियों को आवश्यकता पड़ने पर पृथक् रखा जा सके, तथा दूसरा कमरा कार्यालय और तीसरा औषधियों के लिये चाहिये। दानी महाशय इस ओर ध्यान देवें तो यह पुण्य का काम सफल हो जायगा। दानवीरों से प्रार्थना है कि यथा शक्ति सहायता करें। बच्चों के खेलने के लिये कोई ग्राउण्ड नहीं है। इस के अतिरिक्त आटा, दाल, घी, वस्त्र, दरियां, चादर, जूतियां, बर्तन और अन्य अखराजात के लिये नकदी की जरूरत है जो भाई जितनी सहायता कर सके हर्ष पूर्वक स्वीकार होगी। अनाथालय की सालाना रिपोर्ट मुफ्त मंगा कर पढ़ें।
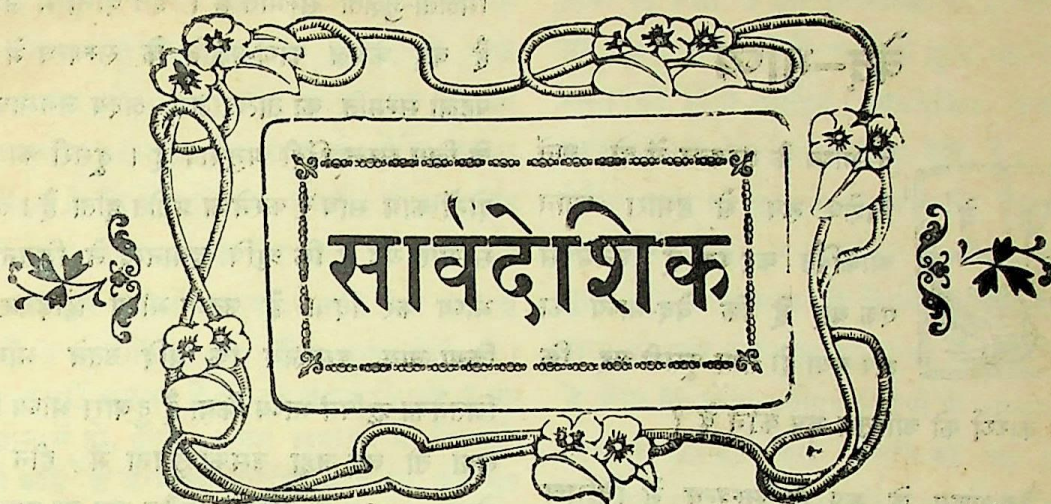
* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख पत्र *

वर्ष १० | ज्येष्ठ-आषाढ़ १९९३ | अंक ३-४
मई-जून १९३६ ई०] [दयानन्दाब्द ११२

वेद की शिक्षाएँ

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥

ऋ० म० १० सू० १२९, म० ७ ॥

भावार्थ—हे (अङ्ग) मनुष्य ! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय कर्ता है, जो इस जगत का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरे को सृष्टि कर्ता मत मान।

सम्पादकीय—

वेद-भाष्य

वेद भाष्य के सम्बन्ध में दो बातें विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित कर रही हैं। उनमें से एक यह है कि वेद-भाष्य का रूप क्या हो तथा दूसरी यह कि इस कार्य्य को अन्तिम रूप कौन दे ?

वेद-भाष्य के रूप के सम्बन्ध में विभिन्न सम्मतियां प्रकाश में आई हैं और इस समय भी आ रही हैं। उनमें से एक सम्मति यह है कि चारों वेदों का नए सिरे से भाष्य हो और पहले वेदों को सरल, सुबोध्य और जन-साधारण के समझने योग्य भाषा में हिन्दी अनुवाद कियो जाय उस अनुवाद के आधार पर वेदों का अन्य देशीय तथा विदेशीय भाषाओं यथा अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच इत्यादि भाषाओं में अनुवाद किया जाय जिससे वेद न केवल भारत में ही वरन् भारत से बाहर भी अधिक से अधिक लोक-प्रिय हों। इस कार्य्य के हो जाने के बाद साङ्गोपाङ्ग वेद-भाष्य का कार्य्य शुरू किया जाय। श्री स्वामी जी के भाष्य तथा वेदों के अन्य भाष्यों की सहायता से ऐसा अनुवाद तैयार किया जाय जिसमें विद्या की मौलिकता और महत्ता यथासम्भव सुरक्षित रहे और इसके लिए यथा संभव प्रत्येक विज्ञान यथा साइंस इंजीनियरिङ्ग, वैद्यक इत्यादि के विशेषज्ञों की पूरी २ सहायता ली जाय।

एक दूसरी सम्मति उपर्युक्त सम्मति से प्राय: मिलती-जुलती सम्मति है। इन दोनों में जो भेद है वह केवल कार्य-पद्धति के सम्बन्ध में है। पहली सम्मति का तात्कालिक लक्ष्य जनसाधारण के लिए सरल हिंदी अनुवाद है। दूसरी का लक्ष्य दोनों काम साथ२ करनेका प्रतीत होता है। तीसरी सम्मति यह है कि ऋषि दयानन्द ने जितना वेद भाष्य कर दिया है उतना भाष्य छोड़कर शेष किया जाय, इसलिये कि यदि उतने भाग का जितनेका ऋषिने भाष्य किया है दुबारा भाष्य किया गया तो वह जहां उसकी तुलना में हीन सिद्ध होगा, समाज के परिश्रम और धन का अपव्यय होगा वहां इस बात की घोषणा होगी कि आर्य समाज को ऋषि का भाष्य मान्य नहीं है। ऐसी सम्मति रखने वालों का समझौतेके तौर पर कहना है कि यदि उस भाग का छुआ जाना अनिवार्य ही हो तो यह किया जावे कि उस भाष्य की पुष्टि में स्वतन्त्र ग्रन्थ लिख दिये जायं और यदि हिंदी अनुवाद करना भी जरूरी ही हो तो स्वामी जी कृत भाष्य का सरल हिंदी अनुवाद कर दिया जाय। इस सम्मति से कतिपय ऐसे लोगों का जिन्होंने ऋषि के भाष्य की छान-बीन की है मत भेद है। ऋषि के भाष्य और उसके अनुवाद से आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है, इसमें उनको सन्देह है।

इन तीनों सम्मतियों पर विचार करने से हमें पहली दो सम्मतियां और उनमें भी वह कि वेदों का तत्काल सरल और सुबोध भाषा में अनुवाद कर दिया जाय, ज्यादा अपील करने वाली प्रतीत

होती है इसलिए कि अनुवाद के हो जाने से समय की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हो जायगी। साङ्गोपाङ्ग भाष्य के लिए मार्ग साफ़ हो जायगा और जनता और उसकी मांग के प्रति न्याय होगा। इसलिए वेद-भाष्य मंडलों से हमारा निवेदन है कि वे पहले इस कार्य्य को सम्पादित करें बाद को साङ्गोपाङ्ग वेद-भाष्य के कार्य्य को हाथ में लेवें। दोनों कार्य्य साथ २ किए जाने से दोनों के उद्देश्यों की पूर्ति कठिन प्रतीत होती है।

दूसरी बात यह है कि यह कार्य्य किसके तत्वावधान में हो, पृथक् २ उन सभाओं के जिन्होंने इस कार्य के करने की घोषणा की है या उन सब के सम्मिलित तत्वावधान में।

इस सम्बन्ध में भी विभिन्न मत प्रकाश में आए हैं। सबसे प्रबल मत जो इस सम्बन्ध में प्रकाश में आए हैं वह यह है कि यह कार्य्य सार्वदेशिक सभा के आधीन होना चाहिए जिससे इस कार्य्य की प्रामाणिकता की उस पर मुहर अंकित हो जाय और वह सब के लिए ग्राह्य हो। एक मत यह है कि यदि वे सभाएँ सम्मिलित रूपसे इस कार्य को न कर सकें तो पृथक् २ किया जाय और जिसने यह कार्य्य शुरू कर दिया है उसे करने दिया जाय और जनता पर उस भाष्य के अच्छा या बुरा होने का निर्णय छोड़ दिया जाय। लोगों की बुद्धि पर ताला न लगाया जाय। जो भाष्य बुद्धि को ज्यादा अपील करने वाला होगा वह स्वतः अन्यों की अपेक्षा मान्य होगा। यदि मान्य न सिद्ध हुआ तो वह कार्य्य बीच में रोका जा सकता है और उस कार्य्य के साधन दूसरे काममें लगाए जासकते हैं।

इस प्रकार की सम्मतियों पर विचार करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस कार्य पर जैसा कि हम इन स्तम्भों में इससे पूर्व भी प्रकाश डाल चुके हैं अन्तिम मुहर सार्वदेशिक सभा की होनी चाहिए। सार्वदेशिक सभा की मुहर को भी हम स्पष्ट किए देते हैं। सार्वदेशिक सभा की मुहर का हमारी दृष्टि में अभिप्राय सार्वदेशिक सभान्तर्गत 'धर्मार्थ सभा' की मुहर से है। इस प्रकार के विषयों में सार्वदेशिक सभा की मुहर 'धर्म्मार्थ सभा' की ही मुहर रहती है जैसा कि अन्य कतिपय विषयों के सम्बन्ध में अब तक रही है। इस सम्मति का यह कार्य्य जब शुरू हो चुका है करने दिया जाय और जनता की बुद्धि पर अनुवाद या भाष्य के अच्छा या बुरा होनेका निर्णय छोड़ दिया जाय, हम आदर करते हैं उसी सीमा तक जहां तक हमारी सभा सोसाइटियों के प्रसिद्ध ढीलेपन के प्रति यह असन्तोष को प्रकाश में लाती है। हम इस सम्मति से इस अंश में सहमत नहीं कि अनुवाद या भाष्य की अच्छाई बुराई, प्रामाणिकता, अप्रामाणिकता का निर्णय जन साधारण पर छोड़ दिया जाय इसलिए कि यह बात मनोवैज्ञानिक सचाई के विरुद्ध है। जन-साधारण की बुद्धि यदि इस निर्णय के लिए समर्थ Competent होती तो विशेषज्ञों द्वारा वा संगठित रूप में इस कार्य्य को करने की जरूरत ही न होती। इस सम्मति के अनुकूल कार्य्य करने का परिणाम यह होगा कि इस कार्य्य का उद्देश्य असफल रहेगा और जनता के धन और श्रम का अप व्यय इससे पृथक् रहेगा। ऐसी सम्मति रखने वालों के पास आर्य्य समाज के बाहर के

उन लोगों के सन्तोष के लिए क्या उत्तर होगा, जो यह प्रश्न करेंगे कि हम किस भाष्य को आर्य्य समाज का भाष्य मानें, इसे या उसे। आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भाष्य का आर्य प्र० सभा युक्त प्रान्त के भाष्य को, प्रादेशिक सभा के भाष्य को, अमुक पंडित के भाष्य को, अमुक मंडल के भाष्य को, अमुक शास्त्री जी के भाष्य को या किसको ?

यह प्रश्न है जिसका उत्तर जनता को मिलना चाहिये ?

हमारी सम्मतिमें इस कार्य्य को सार्वदेशिक सभा द्वारा ही अन्तिम रूप दिया जाना चाहिए। तब ही हम उसे आर्य्य समाज का भाष्य कह सकेंगे; परन्तु इस समय अवस्था यह है कि सार्वदेशिक सभाके पास इस कार्य्य के लिये कोई धन नहीं है और पंजाब सभा को शताब्दी अभी समाप्त हुई है पता नहीं उन्हें इस कार्य्य के लिए कितना धन प्राप्त हुआ है और प्रादेशिक सभा या अन्य किसी सभा ने अभी इस कार्य्य को आरम्भ करने की सूचना नहीं दी है और नाहीं जहां तक हमें ज्ञात है पंजाब सभा ने इस समय तक आरम्भ किया है। यदि यह कार्य्य आरम्भ हुआ है तो संयुक्त प्रान्त की सभा द्वारा ही हुआ है।

—×—

आर्य वीर सेवादल का संगठन

आर्य समाज में एक सुसंगठित आदर्श सेवा दल की बड़ी ज़रूरत है यह निर्विवाद बात है।

इस दल के संगठन का कार्य सार्वदेशिक सभा आर्य्य रक्षा समिति के सहायक मन्त्री श्री बा० शिव चन्द्र जी के द्वारा करा रही है। वे समाजों में दलों के संगठन के लिए दौरा करते रहते हैं। इन दिनों वे संयुक्त प्रान्त के सहारनपुर, मेरठ, मुजफ्फरनगर और देहरादून में दौरा कर रहे हैं। उन्होंने कई जगहों पर सेवा दलों के लिए भूमि तैय्यार करली हैं। २-४ जगहों पर वीर दल स्थापित व पुनर्संगठित भी किए हैं। उनकी शिकायत रही है और है कि आर्य्य समाजें इस कार्य के प्रति उदासीन हैं और उनमें इस कार्य के लिए वह उत्साह नहीं जो उनमें सेवा दलों की बढ़ती हुई आर्य समाजों की मांग के प्रकाश में होना चाहिए। आर्य समाजों की वर्तमान शिथिलता को दृष्टि में रखते हुए इस शिकायत में काफ़ी वज़न देख पड़ता है। इस प्रकार के आदर्श दल के संगठन के लिए ३ बातों की बड़ी ज़रूरत होती है। एक साहित्य, दूसरे पर्याप्त कार्य कर्त्ता और तीसरे अपेक्षित सहयोग। हमारे यहाँ तीनों बातों का अभाव है यह बड़े दुख की बात है। पहले तीनों अभावों के होते हुए भी सभा ने जो कार्य शुरू किया हुआ है उसमें यदि आर्य समाजों का सभा के कार्य कर्त्ताओं को अपेक्षित सहयोग न मिले तो इससे बढ़कर दुख की और क्या बात हो सकती है। यदि यह कार्य मुख्यतया समाजों के अपेक्षित सहयोग के अभाव से बीच में ही सभा को छोड़ देना पड़ जाय या वैसा न हो जैसा होना चाहिए तो आर्य समाज के लिये यह कोई गौरव की बात न होगी। इसलिये आर्य समाजों को इस काम में विशेष दिलचस्पी लेकर इस कार्य को पूर्ण कराना चाहिए। हाँ उनके मार्ग में इस दिशा में जो कठिनाइयाँ सभा से सम्बन्ध रखने वाली हों उनका हल सभा से कराना चाहिए।

संस्थाएँ और अर्थसंकट

आज हमारी सभा सोसाइटियों और संस्थाओं का

आर्थिक संकट बहुत भयंकर देख और सुन पड़ता है। शायद ही कोई समाचार-पत्र होगा जिसमें किसी न किसी सभा सोसाइटीकी आए दिन धनकी अपील न देख पड़ती हो। शायदही कोई ऐसा बड़ा नगर होगा जिसमें आए दिन धन के लिए डैपुटेशन घूमता हुआ न देख पड़ता हो। शायद ही कोई उदार दानी होगा जिसे आए दिन मांगने वालों से तंग न होना पड़ता हो।

आर्थिक संकट पर जब हम विचार करते हैं तो हमें इसके मूल में ३-४ बातें देख पड़ती हैं। वे इस प्रकार हैं:—

(१) अनावश्यक सभा सोसाइटियों और संस्थाओं की बाढ़।
(२) संस्थाओं के नाम पर दुकानदारी।
(३) संस्थाओं में धन का भयंकर दुरुपयोग।
(४) वर्तमान आर्थिक संकट।
(५) संस्थाओं की अनुपयोगिता।

प्रायः एक ही कार्य के लिये अनेक अनावश्यक संस्थायें स्थापित हुई हुई हैं। इसका एक परिणाम धन और शक्ति का अवांछनीय विभाजन है। यदि इन संस्थाओं पर ख़र्च होने वाला धन आवश्यक संस्थाओं पर ख़र्च हो तो अर्थ संकट बड़ी सीमातक कम होजाय।

संस्थाओं के नाम पर दुकानों और उनमें धन के भयंकर दुरुपयोग तथा अन्यान्य कुत्सित प्रगतियों ने जहाँ सार्वजनिक आर्थिक पवित्रता तथा सार्वजनिक जीवन को निकृष्ट बना दिया है वहां इन्होंने संस्था वा 'सभा सोसाइटी' शब्द को काफ़ी बदनाम कर दिया हैं और इनके अभिशापों का फल हमारी वास्तविक संस्थाओं को भी भुगतना पड़ रहा है। उनमें एक फल आर्थिक संकट है। आवश्यकता इस बात की है कि सार्वजनिक जीवन को और सार्वजनिक आर्थिक पवित्रता को शुद्ध बनाया और रक्खा जाय और नाम निहाद संस्थाओं के अस्तित्व को मिटा दिया जाय।

देश का वर्तमान आर्थिक संकट भी संस्थाओं के आर्थिक संकट के लिये ज़िम्मेवार है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। लोगों की आर्थिक दशा बहुत ख़राब हो गई है। दान वा सहायता के लिए उनमें दम बाक़ी नहीं रह गया है। संस्थाओं को लोगों का कम से कम दोहन करना चाहिये।

हमारी संस्थाओं की आर्थिक दुरवस्था के लिये सबसे ज़्यादा ज़िम्मेवार उनकी अनुपयोगिता है। हमारी संस्थायें निर्जीव और सत्वहीन हो गई हैं। उनकी आत्मायें उनसे निकल गई हैं। उनका वातावरण रूखा बन गया है। उनमें आकर्षण नहीं रह गया है। उनसे लोगों को वह प्रेरणा और स्फूर्ति तथा मार्ग-प्रदर्शन नहीं मिलता है जिनकी जन-साधारण उन से आशा करते वा रखते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम संस्थाओं में जीवन का संचार करें और उनके आदर्श और आत्मा को जीवित जागृत रक्खें तथा देखें कि जनता को उनसे स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती हैं वा नहीं, जिसकी जनता उनसे आशा रखती है। यदि ऐसा हो जाय तो कोई कारण नहीं कि इस आर्थिक संकट के युग में आर्थिक संकट के उपयुक्त विविध कारणों की मौजूदगी में, भी लोगों की थैलियों के मुंह उनके लिए खुले हुए न हों परन्तु जितनी ही कोई सभा सोसाइटी उपयोगी, सजीव और आर्थिक साख वाली होगी उतने ही अधिक सहायता प्राप्ति के उसे अवसर प्राप्त होंगे और उसकी आर्थिक कठिनाइयाँ कम होंगी।

आर्यसमाज की प्रवेश पद्धति

लोगों के आर्य समाज में प्रवेश की एक ही पद्धति

होनी चाहिये यह चर्चा आर्य समाज में बहुत पुरानी चर्चा है। आर्य-समाज की प्रतिनिधि सभाओं के रिकार्ड से यह बात सिद्ध होती है।

सार्वदेशिक सभा के २७। २८ दिसम्बर सन् १९१० के साधारण अधिवेशन के विज्ञापन में यह विषय निम्न प्रकार अङ्कित देख पड़ता है।

"शुद्धि के लिये एक ख़ास नियम बनाया जाय जो ज़माना हाल के मुताबिक़ हो जिसके अनुसार शुद्धियाँ की जाया करें ताकि शुद्धि पर कोई एतराज़ न कर सके।"

इस विषय पर विचार करके सभा ने निम्न सज्जनों की एक उपसमिति के सुपुर्द पद्धति के बनाने का कार्य्य किया।

१—श्री० स्वामी नित्यानन्द जी (संयोजक)
२— ,, पं० शिवशङ्कर काव्यतीर्थ ,,
३— ,, पं० तुलसी राम ,,
४— ,, ,, आर्य मुनि ,,
५— ,, ,, नन्दकिशोर देव शर्मा ,,
६— ,, ,, बालकृष्ण शर्मा शास्त्री ,,
७— ,, ,, धीरेश्वर शर्मा ,,

इसके बाद इसी कार्य्य के निमित्त ७-१०-१९१३ की साधारण सभा के नि० सं० ८ के अनुसार यह कार्य्य श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी तथा स्वामी नित्यानन्द जी की एक उपसमिति के सुपुर्द हुआ। बाद में यह कार्य सभा द्वारा केवल पं० तुलसीराम जी के सुपुर्द हुआ। इस सम्बन्ध में हमें आगे किसी कार्य्यवाही का मथुराशताब्दी तक उल्लेख नहीं मिलता है।

मथुरा के शताब्दी महोत्सव के अवसर पर यह प्रश्न 'विद्या परिषद्' के सामने विचारार्थ आया और परिषद् ने निम्न पद्धति की सिफ़ारिश की

'यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक व्यक्ति के चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान या अन्य कोई मतावलम्बी, आर्यसमाज में प्रवेश की पद्धति एक ही होनी चाहिए और वह यह हो—

जब एक या एक से अधिक ऐसे सज्जनों का जो वैदिक धर्म्मी नहीं हैं आर्य्य समाज में प्रवेश संस्कार हो तो प्रारम्भ में सब लोग (जिनमें प्रवेशार्थी भी सम्मिलित हों) एकत्रित होकर संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में विहित हवन करें। हवन में सबको स्नानादि से शुद्ध होकर बैठना चाहिए। जिन के शिर पर शिखा न हो उनको शिखा रखाकर बैठना चाहिये। हवन की विधि समाप्त होने पर आचार्य प्रवेशार्थियों से उनकी लोक भाषा में निम्न लिखित दो प्रश्न करें।

(१) क्या तुमने आर्य समाज के दश नियम जान लिए हैं ?

(२) क्या तुम वैदिक धर्म के अनुकूल आचरण करने की प्रतिज्ञा करते हो ?

प्रत्येक प्रश्न का पृथक् २ स्वीकारात्मक उत्तर मिल जाने पर आचार्य अभिलाषी से गायत्री मन्त्र का पाठ करावें और उसका अर्थ बतलावें।

अन्त में 'अग्ने व्रत पते' इत्यादि और 'अग्ने यज्ञे तपः' इत्यादि मन्त्रों से आहुति डालकर पूर्णाहुति की जाय।"

सार्वदेशिक सभा की अन्तरङ्ग सभा ने अपनी ३०-१२-२६ की बैठक में निश्चय सं० १ के द्वारा इस पद्धति को स्वीकार करके प्रतिनिधि सभाओं तथा समाजों को इस पर अमल करने की प्रेरणा की। आर्य समाज की यही प्रचलित प्रवेश पद्धति है। आर्य समाजों को इस पद्धति को अधिक से अधिक सक्रिय बनाना चाहिए। आशा है आर्य समाजें इस बात पर विशेष ध्यान देंगी और रक्खेंगी।

अबीसीनिया

इटली का अबीसीनिया को अधिकृत करना संसार के इतिहास की एक काली घटना हैं। इस घटना से लुटेरी राष्ट्रीयता और भयावने साम्राज्य वाद की विभीषिका लोगों के सामने पूर्णतया आगई है। इटली अन्य साम्राज्यवादियों की नाईं अपनी साम्राज्य विस्तार की योजना को सफल बनाने के यत्न में था। अबीसीनिया उसके लक्ष्य में आया हुआ था। अबीसीनिया निर्बल था, युद्ध के वर्तमान शस्त्रास्त्र से विहीन था। इटली प्रबल था, युद्ध के वर्तमान शस्त्रास्त्र से सुसज्जित था। अबीसीनिया का क़सूर, यदि 'क़सूर शब्द के प्रति अन्याय न किया जाय, तो अपनी और अपने अधिकार की रक्षा करना था। अबीसीनिया का सहायक सिवा दैव के कोई न था। इटली के सहायक कई प्रबल राज्य थे। साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा ने, लुटेरी राष्ट्रीयताने, अबीसीनिया पर आक्रमण किया अबीसीनिया रक्षा के लिए विवश हुआ। युद्ध हुआ जो होना था वही हुआ। बल ने अधिकार पर विजय प्राप्त करली। इटली अबीसीनिया के अधिकृत होगया।

राष्ट्र संघ (लीग आव नेशन्स) का मुख्य उद्देश्य अपनें निर्बल सदस्यों की सबल सदस्यों से रक्षा करना है। इटली और अबीसीनिया दोनों ही राष्ट्र संघ के सदस्य थे। उसका कर्त्तव्य ईटली से अबीसीनिया की रक्षा करना था परन्तु उसने रक्षा न की और इस प्रकार अपनी निस्सारता संसार के लोंगों के सामने सुस्पष्ट रूप में रख दी। इस घटना ने सिद्ध कर दिया है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस का न्याय ही प्रचलित है।

अबीसीनियन सम्राट ने और अबीसीनियों के देश भक्त लोगों ने अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जिस आत्म-त्याग और वीरता का परिचय दिया है उसका वर्णन इतिहास का एक चमकता हुआ अध्याय होगा।

अबीसीनिया और इटली दोनों ही ईसाई राष्ट्र हैं। ईसाई धर्मके बड़े २ धर्माध्यक्षों और बिशपोंका परम कर्तव्य था कि वे इटली को अपने अनीति-पूर्ण व्यापारसे रोकते परन्तु यह देखने पर कि उन्हों ने इस कर्तव्य का कैसा पालन किया है, कोई भी समझदार व्यक्ति दुखी हुए बग़ैर नहीं रह सकता। उन्होंने इस कर्तव्य की ठीक वैसी ही अवहेलना की है जैसी वे इस प्रकार के अन्य अवसरों पर प्रायः किया करते हैं। उनमें से कुछ ने अबीसीनिया के प्रति सहानुभूति ज़रूर दिखलाई। परन्तु उनकी सहानुभूति केवल ओंठों तक ही रही है।

इटलीने बर्बर अबीसीनियनोंको 'सभ्य' बनाना, इस युद्ध का उद्देश्य घोषित किया था। अपने को सभ्य समझने वा घोषित करने वाले इटली ने निर्दोष अबी-सीनिया पर जो भयंकर अत्याचार किए हैं उनके द्वारा उसकी सभ्यता की बीभत्सता लोगों के सामने भली प्रकार आई है और वे सभ्यता के संदेश को भलीभाँति समझ गए हैं। साम्राज्य-बादियों की सभ्यता का सन्देश बल, छल, कपट इत्यादि कुत्सित उपायोंसे देशों को अधिकृत करना, उनको हर प्रकार से लूटना, उनका दोहन करना और उनको प्रत्येक दृष्टि से निर्जीव करना और बनाए रखना है।

इटली के भाग्य विधाता मुसोलिनी ने अबीसीनिया

की विजय को यूरोप में शान्ति का सन्देशहर प्रगट किया है। साम्राज्य-वादी देशों की स्वार्थ–लिप्सा और लालच को यूरोप की महान शक्तियों के विशिष्ट स्वार्थों की पारस्परिक टक्कर को तथा युरोपकी वर्तमान अशान्त स्थिति को देखते हुए उपर्युक्त प्रगटीकरण लोगों की आँखोंमें धूल झोंकने का प्रयत्न मात्र ही देख पड़ता है विशेषतः उन ज़िम्मेवार राजनीति विशारदों के जो युरोप की स्थिति का बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से परिवेक्षण कर रहे हैं इस कथन के प्रकाशमें कि अबीसीनिया का युद्ध एक बड़े यूरोपीय युद्ध का सन्देशहर है।

रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण मिशन के १०२ केन्द्रों में से ४२ केन्द्र भारत में हैं और बाक़ी युरोप, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, ब्रह्मा, लङ्का, और स्ट्रेट सैटिलमैण्ट में हैं।

आर्यसमाज के एक उपनियम का स्पष्टीकरण

आर्य्यसमाज के प्रचलित उपनियमों की जिस धाराका स्पष्टी-करण ज्यादा अपेक्षित रहता है वह धारा सं० ४ है और उसमें भी निम्न दो उपधाराओं का।

४ (क) जिनका नाम किसी आर्यसमाजमें सदाचार से एक वर्ष अङ्कित रहा हो और वे अपनी आय का शतांश मासिक वा वार्षिक वा अधिक धन उस समाज को देते रहे हों और जिनकी उपस्थिति साप्ताहिक सत्संगों में कम से कम २५ प्रतिशतक हो तो वे आर्य सभा सद हो सकते हैं।

(ख) उपधारा (क) में प्रयुक्त सदाचार की परिभाषा इस प्रकार हैः—

संध्या आदि नित्य कर्म, शुद्ध वृत्ति, वैदिक संस्कार पतिव्रत तथा पत्नीव्रत इत्यादि सदाचार हैं। व्यभिचार, मद्यादि मादक द्रव्यों और मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन चोरी छल कपट रिश्वत आदि दुराचार हैं।

अभी हाल में आर्य समाज बच्छोवाली लाहौर ने उपर्युक्त उपधाराओं का इस सभा से स्पष्टीकरण कराया है। समाज की शंकाएं और उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार हैः—

शंकाएें

(१) सन्ध्यादि नित्य कर्म से क्या अभीष्ट है? सन्ध्याहवन? या पांचों महायज्ञ?

(२) सदाचार की प्रमाणिकता स्वयं सभासद करेगा, या अधिकारी गण, या अन्तरंग सभा? श्री स्वामी जी के बनाए हुए नियम उदार हैं। आपका on oath declare करने का प्रश्न है, जो कोई करने को तैयार नहीं होता। लाहौर से declare करके १ दर्जन सभासद भी न होंगे।

(३) 'सदाचार'की तुलना किस साधन से होगी।

(४) जिन सज्जनों की आय नियमित नहीं है उनकी आयका शतांश ठीक ठीक कैसे जाना जा सकता है? declare करने को लोग तैयार नहीं होते। २५०) का नियम स्थगित होना भी यह आर्य्य-समाज ठीक नहीं समझता।

(५) मासिक वेतन पाने वाले सभ्यों की आय उनको तत्काल मिलने वाला वेतन ही समझा जायगा या वेतन सम्बन्धी प्राविडैण्ट फण्ड बोनस आदि प्रकार की काटें भी सम्मिलित की जावेंगी? ऐसे लोगों की जिनको किसी और प्रकार से जैसे अपने जमा धन के सूद से जो आय होती है आय को प्रायः सम्मिलित करने की प्रथा नहीं है। केवल वेतन का शतांश देते हैं।

मन्त्री
आर्य्य समाज बच्छोवाली
२-२-१९९३ लाहौर

स्पष्टीकरण

आपके पत्र सं० × तिथि २-२-६३ में अङ्कित प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं :—

(१) उपनियम ४ (ख) में वर्णित सन्ध्या आदि नित्य कर्म्म से अभिप्राय सन्ध्या और हवन अवश्य है।

(२) सदाचार की प्रमाणिकता किस प्रकार करनी चाहिए, इसका निर्णय स्थानिक आर्य्यसमाज की अन्तरंग सभा के आधीन है।

(३) सदाचार की तुलना किस साधन से होगी। यह प्रश्न अस्पष्ट है। जो नियम ४ (ख) में सदाचार की व्याख्या है उसके सम्बन्ध में दो बातें हैं जिनको लक्ष्य में रख कर सदाचार का निर्णय करना चाहिए :—

(i) आर्य्य सभासद की मनोवृत्ति यह होनी चाहिए कि सदाचार के प्रत्येक वर्णित विवरण में उसका विश्वास है और यह कि उसे उसके पालन करने के लिए यत्नवान होना चाहिए।

(ii) वह पूरा पूरा यत्न उनके पालन करने का करता है।

इन दोनों बातों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करके अन्तरंग सभा को उसके सदाचारी होने का निर्णय करना चाहिए।

(४) जिनकी आय नियमित नहीं है। ऐसे सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वे जो चन्दा देते हैं उसके शतांश होने की घोषणा करें। इस सम्बन्ध में आपकी सूचना के लिए यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि २५०) वाले नियम को फिर बना देने का विषय विचाराधीन है और इस सभा ने प्रान्तिक सभाओं से सम्मति मांगी है।

(५) मासिक वेतन वाले कर्म्मचारियों की आय के सम्बन्ध में उनकी आय नियम पूर्वक मिलने वाला वेतन ही समझा जावेगा।

नारायण स्वामी

प्रधान, सार्वदेशिक सभा, देहली

हम बच्चे पैदा करने की मशीन नहीं हैं

गत काँग्रेस के अवसर पर लखनऊ में महिला-सम्मेलन में देवियों के जो भाषण हुए थे उनमें से एक भाषण का कुछ अंश इस प्रकार है जो हमारा ध्यान विशेष रूप से खींचता है:—

"हम केवल बच्चे पैदा करने की मैशीनें नहीं हैं। हमें अधिक उपयोगी और अधिक महान कार्य करना है अर्थात् भारत के स्वतन्त्रता संग्राममें हमें अपना योग देना है, क्योंकि इस संग्राम के पीछे हम ही वास्तविक शक्ति हैं। श्रीमती वेनकारा मूलजी ने मीटिंग को सम्बोधन करते हुए कहा। आगे उन्होंने कहा 'हममें से प्रत्येक सरोजिनी नायडू और कांग्रेस का प्रेजीडेण्ट हो सकती है यदि हम इसके लिए यत्न करें और अपना पार्ट अच्छी तरह खेलें। भारतीय महिलाएँ लजीलो और पिछड़ी हुई थीं परन्तु सन् १६३० के राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक इतिहास का निर्माण कर दिया है। उसका कारण यह है कि महिलाएँ मैदान में आईं और खुशी-खुशी उन्होंने लाठियों की मार और जेल की यन्त्रणाएं सहीं। सबके लिए यह एक चमत्कार था और मेरी अपील आप बहनों से है कि आप अपने दिलों में जागृति की इस ज्वाला को प्रज्वलित रक्खें।'

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में तथा अन्य लोकोपकारी कार्यों में भारतीय महिलायें, जिस वीरता और

आत्म-त्याग का परिचय दे रही हैं उसके लिए हम उनका सम्मान और उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु हमें सन्देह है कि अच्छे बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करने का शान्त कार्य्य उनके किसी दूसरे कर्तव्य से जिसका वे पालन कर सकती हैं हीन है।

बेशक, महिलायें केवल बच्चे पैदा करने की मैशीनें न हैं और न होनी ही चाहियें परन्तु उन्हें यह नहीं भुला देना चाहिए कि उनका एक स्वाभाविक कार्य्य बच्चे पैदा करना है। जाति की माताओं के द्वारा यह कार्य अच्छा भी बनाया जा सकता है और निकृष्ट भी। परन्तु अपने में वह कार्य घृणा योग्य नहीं है। क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रीमती मनी वेनकारा, वा महात्मा गांधी की मातायें अपने मातृत्व को घृणा की दृष्टि से देखने का कारण रखती थीं। कृपया मातृत्व का अपमान मत करो।

माता का हृदय मानव-समाज की सबसे बहुमूल्य सम्पदा है और यह सम्पदा बच्चों में ही फलती फूलती है।

लण्डन सर्व धर्म सम्मेलन

आगामी ३ जुलाई से १८ जुलाई तक लण्डन में सर्व धर्म सम्मेलन का एक अधिवेशन होगा। इस सम्मेलन में बहुत से विद्वान आमन्त्रित किए गये हैं। आर्य समाज के भी २ विद्वान इसमें आर्य समाज का प्रतिनिधित्व करेंगे। सर फ्रांसिस यंगहज़्बैंड इसके ब्रिटिश नैशनल सभापति हैं। उन्होंने अभी हाल में 'एशियाटिक रिव्यू' में संसार के भ्रातृत्व पर जिसका प्रसार इस सम्मेलन का उद्देश्य है एक लेख लिखा है। वे लिखते हैं:—

"कैन्टरबरी के आर्च बिशप ने अपने रविवार के व्याख्यान में दिखलाया है कि युद्ध रोकने और शान्ति स्थापित करने के लिए माहिदों और स्वीकार पत्रों की अपेक्षा अधिक गहरी शक्ति की जरूरत है। उन्होंने बतलाया कि यह शक्ति आध्यात्मिक होनी चाहिए। उन्होंने यह भी बयान किया कि ईसाई भाव वही आध्यात्मिक शक्ति सिद्ध होगा जिसकी संसार को जरूरत है। यदि लोग नेकी, न्याय, भ्रातृत्व और शुभ भावनाओं के प्रभु के शुभ शासन को सच्चाई के साथ स्वीकार करलें तथा पालन करें तो युद्ध बन्द हो जायेंगे, शान्ति स्थापित हो जायगी। ईसाईयों को हर जगह पहले परमात्मा के राज्य की खोज करनी चाहिए और उस साम्राज्य को राष्ट्रीय गलत फ़ैमियों, कटुताओं, उत्तेजनाओं और महत्वाकांक्षाओं के आधिपत्य से ऊपर रखना चाहिए।' '

दो अन्य आर्च बिशपों ने अपने पत्रों में संसार की शांति की सच्ची और स्थायी नीव रखने में वर्तमान राजनैतिक माहिदों की असमर्थता प्रगट की है। इसके आगे सर फ्रांसिस लिखते हैं:—

शान्ति स्थापित करने वाली शक्ति आध्यात्मिक होनी चाहिए, यह एक महान सत्य हैं जिसका मानव समाज को अध्ययन करना है।"

परन्तु इस सत्यके निर्धारण के लिए मानव समाज केवल ईसाई धर्म के व्याख्याताओं पर निर्भर नहीं हैं। दूसरे धर्मों के व्याख्याता भी शताब्दियों से उसी सत्य की घोषणा कर रहे हैं। और भविष्य में घोषणा जारी रखने के लिए उन पर विश्वास किया जा सकता है। संसार के सब बड़े २ धर्म आध्यात्मिक चीज़ों की उपा-

देयता और पारस्परिक शान्त शुभ भावना और सच्चे भ्रातृत्व के विकाश की आवश्यकता मनुष्यों पर अङ्कित करते रहे हैं।

आज इन समयों में जब कि संसार में युद्ध के बादल मंडला रहे हैं और कुछ राष्ट्र आध्यात्मिक शक्ति की महत्ता को जान पूछ कर ठुकरा रहे हैं और जो पशु बल के द्वारा अपने उद्देश्यों की सिद्धि में विश्वास रखते हैं, यह उचित ही प्रतीत होता है कि आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास रखने वाले लोग भले ही उनका धर्म कोई क्यों न हो मिल कर एक जगह बैठें और सम्मिलित उद्देश्य की सिद्धि के उपाय सोचें। वह उद्देश्य भौतिक के ऊपर आध्यात्मिकता का आधिपत्य और मनुष्यों और राष्ट्रों के बीच भ्रातृत्व की भावना को गहरा बना देना है।

मुस्लिम तबलीग़ का कुत्सित ढंग

पाठक अन्यत्र 'मुस्लिम तबलीग़ का कुत्सित ढंग' शीर्षक में मुसलमानों के प्रचार के हथकंडों की बाबत पढ़ेंगे। ये हथकंडे लोगों को धन, नौकरी, स्त्री इत्यादि के प्रलोभन देने दिलाने के हैं। ये हथकंडे नये नहीं हैं। जो लोग अपने धर्म के तत्व के द्वारा लोगों के हृदयों को नहीं जीत सकतेहैं वे ही इन उपायों का अवलम्बन प्रायः लिया करते हैं। इन हथकंडों पर आश्चर्य करने या उनसे भयभीत होने की ज़रूरत नहीं। ज़रूरत है केवल उनसे सावधान रहने की और लोगों को सावधान रखने की।

आर्य-समाज और दलितोद्धार

आज भारतवर्ष में दलितोद्धार के लिए आर्य्य समाज के अतिरिक्त बहुत से व्यक्ति और कई धार्मिक समाज मैदान में देख पड़ते हैं। मुसलमान दलित कहे जाने वाले भाइयों को अपने दायरे में लेने के लिए हाथ फैलाये खड़े हैं, सिक्ख लोग उन्हें अपने यहाँ आश्रय दे रहे हैं। हिन्दुओं का 'हरिजन सेवक सङ्घ' अपने प्रायश्चित की अपील को लिये 'अस्पृश्यता' निवारण के लिये बद्ध कटिपर है।

परन्तु ज्यों २ ये व्यक्ति और सोसाइटियाँ दलितोद्धार की समस्याओं को सुलझाने का यत्न करते हैं त्यों २ वह पेंचीदा होती जाती है। इसका कारण देखने और समझने वालों को देख पड़ रहा है। वह कारण समस्या को उसके मूल में आक्रमण न करके ऊपर से आक्रमण करने का है। दलितों की समस्या जितनी धार्मिक समस्या है उतनी राजनैतिक, आर्थिकऔर भौतिक नहीं है। दलितों को कतिपय राजनैतिक अधिकारों वा उनके के प्रलोभनों के देने, प्रायश्चित भावना से उनकी शिक्षा तथा आर्थिक अभ्युत्थान से, उनकी कतिपय समाजिक असुविधाओं के दूर करने कराने से यह समस्या हल नहीं हो सकती। यह समस्या तब ही हल हो सकती है जब धार्मिक रूप से उसका हल किया जाय। वह हल लोगों के हृदय से दलितों को दलित समझने तथा दलितों को भी दूसरों को ऊंचा समझने को प्रवृत्ति का समूलोच्छेद है। यह हल आर्य्य समाज के पास है। आर्य्य समाज की इस समस्या के हल की प्रगतियोंका रिकार्ड उतनाही पुराना है जितना वह स्वयं पुराना है। आर्य समाज को इस समस्या का हल वर्तमान में अपनी प्रगतियों का एक विशेष अंग बनाने की ज़रूरत थी। प्रसन्नता है कि सार्वदेशिक-सभा ने इस परिस्थिति को समझ कर इस कार्य को विशेष रूप से करने का अपनी २४-५-३६ की

अन्तरंग सभा में निश्चय कर दिया है। सभा ने एक ऐसी योजना बनाने का निश्चय किया है जो दलितों की समस्या को भली प्रकार हल कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभा ने निम्न सभासदों की एक उप समिति बनाई है जो, ३ मास के अन्दर पूरी तरह अनुसंधान करके अपनी रिपोर्ट अन्तरङ्ग में पेश करेगी। इस समिति को यह अधिकार दिया गया है कि यदि समिति अपनी रिपोर्ट तय्यार करने के लिए देश के भिन्न २ स्थानों का दौरा करना आवश्यक समझे तो दौरा भी करें।

समिति के सदस्य

(१) श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी
(२) प्रो० सुधाकर
(३) श्री पं० इन्द्र जी
(४) श्री ला० नारायणदत्त जी
(५) श्री ला० देशबन्धु जी (संयोजक)

आर्य जनता और हिन्दू समाज को इस कार्य में अपने योग के लिये तय्यार रहना चाहिए और यत्न होना चाहिए कि यह स्कीम जनता के समक्ष उचित समय पर आ जाय।

अनाथालय या दूकान

हमारे देश में बहुसंख्यक अनाथालय हैं जो अनाथों की रक्षा का उत्तम कार्य कर रहे हैं। ये अनाथालय हर प्रकार से योग्य बनाकर, शिक्षित करके और दस्तकारी इत्यादि सिखाकर अनाथों को अपने पैरों पर खड़ा होने में समर्थ बनाकर न केवल अनाथों का ही वरन् समाज का भी बड़ा हित कर रहे हैं। ऐसे अनाथालय जनता के हर प्रकार के प्रोत्साहन के अधिकारी हैं।

दुर्भाग्य से ऐसे अनाथालय भी हैं जिन्हें "अनाथालय' के नाम से सम्बोधन करना 'अनाथालय' शब्द के प्रति अन्याय और उसका अपमान करना है। उन्हें 'दूकान' शब्द से सम्बोधन करना ही ज्यादा ठीक होगा। स्वार्थी और ग़ैर-ज़िम्मेबार लोगों ने अपने स्वार्थ साधन के निमित्त दूकानें खोली हुई हैं। धर्म्म भीरू जनता की अविवेक-पूर्ण दान-शीलता और चाँदी के टुकड़ों पर ख़रीदी हुई पुलीस के आश्रय में ये दूकानें ख़ूब फल-फूल रही हैं। ये लोग अनाथों का सर्वनाश करते हैं। उन्हें अपनी काम-वासना का शिकार बनाते हैं और हारमोनियम उनके हाथ में देकर उनसे नित्यप्रति घर २ भीख मंगवाते हैं और इस प्रकार समाज में भिखारियों और अयोग्य व्यक्तियों की एक नई श्रेणी बना रहे हैं। वस्तुतः अनाथों के हित और सार्वजनिक जीवन की शुद्धता के लिए इन दूकानों का नष्ट किया जाना वांछनीय है इस कार्य्य को जितनी उत्तमता और सफलता के साथ मुख्यतया स्थानीय लोग कर सकते हैं उतनी उत्तमता और सफलता के साथ बाहर के लोग नहीं कर सकते उनसे तो आवश्यक सहायता ही ली जा सकती है। इसलिए उन्हें ही यह कार्य करना चाहिए। निश्चय ही उन लोगों की इस कार्य की सफलता समाज-सेवा में अनुकरणीय योग होगा, और वे अनाथों और अपने नगर का बड़े से बड़ा हित करेंगे। क्या हम आशा करें कि नगरों की बढ़ती हुई बीमारी को दूर करना स्थानीय लोग अपना कर्तव्य समझेंगे और उसे दूर करेंगे?

मेरी केरल यात्रा

डा० अम्बेदकर के विस्फोट से पहले ही मलाबार के इजवाज ने हिन्दू धर्म के परित्याग की इच्छा जाहिर की थी। लगभग १० साल पर्य्यन्त उन्होंने समान व्यवहार प्राप्त करने के हर संभव साधन को आजमा कर, परन्तु कोई फल न निकलने पर बड़ी ग्लानि के साथ अपने पूर्वजों के धर्म को तिलाञ्जलि देने का निश्चय कर लिया था। उनमें से कुछ ने बौद्ध और कुछ ने ईसाई या मुस्लिम धर्म स्वीकार भी कर लिया था परन्तु शीघ्र ही उन्हें विदित हो गया था कि एक एक दो दो के धर्म परिवर्तन से कुछ नहीं बनेगा इसलिए वे सामूहिक धर्म परिवर्तन की सोचने लग गए थे। अपने २ धर्म के दृष्टिकोण को समझाने और यह बतलाने के लिए कि इजवाजों का कोई धर्म विशेष अंगीकार करने पर क्या फायदा होगा, योगम ने विविध धर्मों के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया था। मुस्लिम धर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए श्री० के० एल० गावा अपने ३-४ मित्रों के साथ पंजाब से आए थे। अमृतसर के मास्टर तारासिंह बी० ए०, बी० टी० सिक्खों की ओर से तथा सीलोन के २ बौद्ध भिक्षु बौद्धों की ओर से पहुँचे थे। ईसाई मिशनरी वहां पहले से ही बड़ी तादाद में मौजूद थे। सार्वदेशिक सभा की ओर से आर्य्य समाज का प्रतिनिधित्व करने मैं पहुँचा था। वहां धर्म की चिल्ल पों मची था। कटु समालोचक को ऐसा प्रतीत होता था मानो केरल के आकाश में इजवाजों के शवों को नोचने के लिए आतुर गिद्धों का झुंड मंडरा रहा है।

मैं दो दिन एनकिलम में ठहरा। कोचीन राज्य का यह अत्यन्त महत्व पूर्ण शहर है। वहां मैं इजवाजों के बहुत से लीडरों से मिला और उनके साथ काफी विचार परिवर्तन किया। वहां से अलप्पी और किलन के रास्ते त्रिवेन्द्रम के लिए रवाना हुआ। सौभाग्य से श्री मती ब्रजलाल नहरू के प्रधानत्व में हरिजन सेवक संघ के तत्त्वावधान में वहां (त्रिवन्दरन) में एक कान्फ्रेंस हो रही थी। मैं ने भी उस कान्फ्रेन्स में भाग लिया। इसके बाद मैं श्रीयुत केलप्पन, रामचंद्रम गोविन्दन और अन्यों से मिला। आ·तम महाशय प्रसिद्ध इजवा लीडर हैं और रिटायर्ड जज हैं। आजकल वे त्रिवन्दरम में प्रैक्टिस करते हैं। मैं ने उनसे देर तक बात चीत की और इस सम्बन्ध में कि आर्य्यसमाज किस प्रकार इजवाहों की उत्तमसे उत्तम सेवा कर सकता है, उनका बहु-मूल्य परामर्श मांगा। प्रसन्नता है वह मुझे मिला।

ट्रावन्कोर की आबादी लगभग ५० लाख है। इस में से १६ लाख ईसाई, ८ लाख मुसलमान, ६ लाख इजवाज और १० लाख अछूत अर्थात् परियाज, पुलि इत्यादि हैं। इस प्रकार केवल में ७ लाख तथा कथित उच्च वर्ण के हिन्दू हैं।

इजवाजों में दो विभाग हैं। एक तो उच्च इजवाज जो शिक्षित और सम्पन्न हैं और मुख्यतया नगरों और शहरों में रहते हैं। दूसरे निम्न श्रेणी के इजवाज जो गरीब और अशिक्षित हैं। तथा जो मुख्यतया खेतों में मजदूरों का काम करते और ग्रामों में निवास करते हैं। उच्च इजवाज ही सामूहिक धर्म परिवर्तन के लिए चिल्ला रहे हैं। दूसरा विभाग बिल्कुल निर्दोष है। इस विभाग के लोग अपने दरवाजों से भेड़िये को भगाने में अत्यन्त व्यस्त हैं। धर्म परिवर्तन के गुलगपाड़े में शरीक होने के लिये उन के पास समय नहीं है। जैसा कि प्रायः होता है। शिक्षित वर्ग अशिक्षितवर्ग का दोहन करनेका यत्न कर रहा है।

ईसाई धर्म प्रचारक गत कई शताब्दियों से मलाबार में काम कर रहे हैं। उनके असंख्य गिर्जे, हस्पताल, स्कूल और व्यवसाय शालाएं इत्यादि हैं। उनकी संस्थाओं में हजारों इजवाज काम

पर लगे हुए हैं इसलिए केवल आर्थिक प्रलोभन ही है जो उन्हें ईसाई चर्च के नजदीक ले जाता है ।

लम्बे अर्से से वहां मुसलमान भी कर्म क्षेत्र में हैं । बड़ी सीमा तक वे सफल भी हुए हैं । उनकी संख्या लाखों तक पहुँच गई है । इस समय वहां के हरिजनों में बहुत सी जमाअतें काम कर रही हैं । उन्हें काफी आर्थिक सहायतो प्राप्त है ।

सिक्ख लोग इस क्षेत्र में नवीन हैं । उन्होंने शिरोमणि गुरु द्वारा प्रबन्धक कमेटी के हाल के अधिवेशन में ५ वर्षों में ७ लाख रुपया खर्च करने का निश्चय किया है । इस वर्ष मलाबार में २ लाख रुपया खर्च करने का इरादा है । इससे पूर्व ५ नए दीक्षितों को कुछ ज़मीन और आर्थिक सहायता का वचन दिया जा चुका है ।

प्रादेशिक सभा के आधीन जब पं० ऋषिराम जी इञ्चार्ज थे कुछ समय तक आर्य्य समाज ने भी वहां काम किया है । हजारों रुपया वहां खर्च हुआ है । कुछ स्कूल और अनाथालय भी खोले गए थे । परन्तु कार्य्य अधिक समय तक जारी न रह सका और समाज का कोमल पौधा केरल के लोगों की अत्यधिक निर्दयता के कारण मुर्झा गया । मेरा विश्वास है कि मलाबार फण्ड में श्री महात्मा हंसराजजी के पास रुपया पड़ा हुआ है ।

केशव देव ज्ञानी, प्रचारक
सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली

(सार्वदेशिक सभा की ओर से ट्रावनकोर राज्य में इस समय सभा के प्रचारक प्रचार कर रहे हैं । इस कार्य को विस्तृत करने की एक विस्तृत स्कीम सभा के विचाराधीन है । यह कार्य तत्काल विस्तृत किए जाने योग्य हैं । आर्य नर-नारियों को सभा का इस कार्य में हाथ बटाना चाहिए । —सम्पादक)

शहीदगंज और पीर कक्कूशाह केश का फैसला

मुकद्दमे मे सिखों की जीत

लाहौर, २५ मई ।

आज सेशन जज की अदालत से पीर कक्कू शाह और शहीद गंज केस का फैसला होगया ।

सब सिख अभियुक्तों को सेशन जज ने बरी कर दिया ।

शहीद गंज केस में जायदाद सिखों की मानली गई और डाक्टर मुहम्मद आलम के दावे को खारिज कर दिया गया ।

स्मरण रहे कि पीर काकूशाह केस बहुत दिनों से चल रहा था । ११ सिखों पर जिनमें जत्थेदार तारा सिंह और सरदार कुलदीप सिंह भी शामिल थे, यह अभियोग था कि इन लोगों ने पीर कक्कूशाह की क़ब्र गिराकर मुसल्मानों के जज़बात को ठेस पहुँचाई ।

अभियुक्तों की तरफ़ से कहा गया था कि क़ब्र पीर कक्कूशाह की न थी । दूसरे उक्त कब्र सिखों की जायदाद पर खड़ी थी इसलिए उनको अधिकार था कि वह उसका जो चाहते करते । मातहत अदालत ने उनकी इस दलील को स्वीकार न किया था और ११ सिखोंको ६-६ मास से लेकर १५-१५ मास तकके कठोर दण्डकी सज़ा देदी थी।

माननीय सेशन जज ने अपील स्वीकार कर ली और अभियुक्तों को बरी कर दिया ।

अभियोग की कहानी

यह मुक़द्दमा डाक्टर आलम ने दायर किया था और गत ८ जुलाई को शहीदगंज गुरुद्वारा के अहाते की एक पुरानी टूटी फूटी इमारत के सिक्खों द्वारा कथित गिरा दिए जाने के फल स्वरूप दायर किया गया था । मुसलमानों का दावा था कि यह बिल्डिङ्ग मुग़ल शासन में बनी हुई मस्जिद है और सिक्खोंका दावा था कि उनके शहीदों की यह यादगार है । जिनका मुसलमानों ने बध करवाया था।

—

पाश्चिमात्य विद्वानों

की

अध्यात्म-अन्वेषणा

(ले० पण्डित के० ज्ञानी, मद्रास)

डाक्टर पाल ई० जोनसन अमरीका की यूनीवर्सिटी में फिलासफी के प्रोफेसर हैं। आप अपने विषय के आचार्य माने जाते हैं। आपने हाल ही में "अध्यात्म" सम्बन्धी एक लेख लिखा है जिसका प्रारम्भ निम्न प्रकार है—

Man is by nature a seeker. There is an urge within him that will not be still. Every nerve is set for action, every heart beats out the restless cadence of life. we are a frantic human race, darting and double crossing in a whirl of confusion……… yet underneath this superficial striving lie deeper motives. Can there be any pattern of unity in the diversity of our desires?…………The deeper meaning of our incessant exertion is that we are seeking something greater than ourselves, something to worship.

……The Search Eternal.

अर्थात् मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु है। उसमें एक आन्तरिक प्रेरणा है जो उसे शान्त नहीं बैठने देती। उसका प्रत्येक हृदय-स्पन्दन सदा प्रगतिशील हैं। हम सदैव कुछ न कुछ प्रयत्न करते ही रहते हैं।

हमारे अनेकविध प्रयत्नों के मूल में भावना व उद्देश्य की एकता है। क्या यह संभव नहीं कि हमारी विविध इच्छाओं के आधार में एक विशेष समानता हो ?

हमारे अविश्रान्त प्रयत्नों का उद्देश्य किसी महान् वस्तु की प्राप्ति-इच्छा है, किसी ईश्वर (सामर्थ्यशाली) की पूजा है।

उपरोक्त वाक्यों से दो बातों का स्पष्ट पता चलता है। १म वर्तमान अवस्थाओं में अपूर्णता है, अज्ञान है, क्लेश है। २य, इस अपूर्णता व अज्ञान की अवस्थाओं से निकलकर पूर्णता व ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये। इसे ही दर्शन शास्त्रों में 'अध्यात्म' का प्रथम सोपान कहा है।

× × ×

डाक्टर जे० बी० राइन् ने वर्षों मानस-तत्व का अन्वेषण करके एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है—Extra sensory Perception इस पुस्तक की भूमिका दो प्रसिद्ध डाक्टरों यथा फ्रैन्कलिन प्रिन्स और मैक्डावल ने लिखी है।

इसे "बोस्टन सोसाइटी आफ साइकिकल रिसर्च" ने प्रकाशित कराया है।

इस पुस्तक का विषय लेखक के शब्दों में निम्न है:—

Extra-Sensory perception or E. S. P. is a spaceless function. It is the outcome of concentrated attention. It is a total response of the organism without a localised sense-organ of reception. From the psychological approach, E. S. P. resembles sensory response rather than rational, yet not restricted to a localised sensory apparatous, it seems to suggest the mind's independence of material conditions.

……Extra-Sensory perception.

अर्थात् मानस-प्रत्यक्ष एक अभौतिक कार्य है। यह एकाग्र शक्ति का फल है। यह किसी विशेष शरीर-इन्द्रिय द्वारा नहीं होता। यह समूचे शरीर अथवा ज्ञान-तन्तु संस्थान द्वारा होता है। मानस-प्रत्यक्ष के लिये भौतिक साधन अनावश्यक है।

पाठक देखेंगे कि डाक्टर राइन् हमारी योग दृष्टि का वर्णन 'मानस प्रत्यक्ष' अथवा E. S. P. द्वारा कर रहा है। आज कल पश्चिमी मनोवैज्ञानिक जगत् में "दूर-वीक्षण" "दूर-श्रवण" "दूर-भाषण" आदि विषयों की बहुत चर्चा है। वैज्ञानिक रीति से अनेक परीक्षण किये जा रहे हैं जिनका उद्देश्य शरीर से भिन्न मानस तत्व का सम्यक् अध्ययन है।

उपरोक्त डाक्टर लेखक ने अनेक वैज्ञानिकों की उपस्थिति में यह सिद्ध करके दिखलाया है कि यद्यपि मनुष्य का मन सामान्यतः भौतिक इन्द्रियों द्वारा ही अनुभव करता है परन्तु उचित अभ्यास के अनन्तर इसे बिना भौतिक-साधनों के भी उपयोग में लाया जा सकता है। उक्त डा० ने २५० मीलों की दूरी पर बैठी मिस टर्नर को अक्षरशः अनेक मानव सन्देश पहुँचाए तथा अन्य मानस अनुभव दिये।

थियसोफीकल सोसाइटी के अनेक धुरन्धर विद्वान् "मानस—प्रत्यक्ष" पर गम्भीर गवेषणाएं कर रहे हैं। वेद का "यज्जाग्रतो दूर मुदति दैवम्" आदि मन्त्रों वाला सूक्त इस विषय में विशेष महत्व रखता है। परन्तु जब तक हम उन मन्त्रों में आए मन-सम्बन्धी विशेषणों को वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा सिद्ध न करें तब तक उनका कोई महत्व नहीं।

× × ×

डाक्टर एलैक्सिज कैरेल (Dr. Alexis carrel) जो कि राकफैलर इन्स्टिटयूट के सदस्य हैं और जीवन शास्त्र (Bialogy) में नोबल-प्राइज भी ले चुके हैं, मानस-तत्व के विषय में निम्न छः परिणामों पर पहुँचे हैं:—

१—दूर-दृष्टि या क्लेयरवायैन्स द्वारा इन्द्रियों की अपेक्षा भी अधिक निश्चित प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

२—बिना बोले चाले एक दूसरे व्यक्ति तक अपना बिचार पहुँचाया जा सकता है।

३—मनःशक्ति स्थान व समय की सीमा से बाहिर है।

४—कई व्यक्तियों में एक अपूर्व मनःशक्ति का विकाश होता है जो शरीर व इन्द्रियों से असम्बद्ध है।

५—दिव्य मानस-दृष्टि द्वारा न केवल दूरस्थ विषयों का अनुभव होता हैं परन्तु भूत व भविष्य का भी प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

६—प्रार्थना व स्व-भावना की शक्ति से मनुष्य की अनेक आन्तरिक व्याधियां दूर की जा सकती हैं।

मिस्टर ई० डबल्यू मैकूब्राइड जो कि लण्डन के "इम्पीरियल कालेज आफ साइन्स" में भूगर्भ शास्त्र के अध्यापक हैं अध्यात्म सम्बन्धी निम्न परिणाम पर पहुँचे हैं—वे एक स्थान पर लिखते हैं—

On the basis of cogent reason, I have come to hold that there does abide an Intelligent power behind the universe, and on the basis of psychical research I am prepared to maintain the immortality of the soul in man.

—The Hibbert Journal
for Jan. 1936.

अर्थात् मैं निश्चित प्रमाणों द्वारा इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस संसार की आधार-भूत एक चेतन-शक्ति अवश्य वर्तमान है और मनोवैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि मनुष्य की आत्मा अमर है।

× × ×

उपरोक्त विषय के अतिरिक्त पुनर्जन्म, कर्मफल, दैवीय अनुभव, सिद्धियां, आत्मिक जगत आदि विषयों पर अनेक पाश्चमी विद्वान परीक्षण कर रहे हैं जिनके विषय में हम फिर कभी लिखेंगे।

सत्यार्थप्रकाश-लेख-माला

सन्तानोत्पत्ति की तय्यारी

(लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी)

विवाह का प्रयोजन संतान उत्पन्न करना है। इस पक्ष में अनेक वैद्यों ने अनेक लेख लिखे हैं। मैं इस लेख में उनका उल्लेख न करूँगा। मैं केवल धार्मिक पुस्तकों के लेख उद्धृत करूँगा। मनु जी ने—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृह दीप्तयः। मनु ६.२६
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्। ,, ,, २७

स्त्री पुरुष के संम्बन्ध से संतानोत्पन्न होती है। जिस समय स्त्री पुरुष की संतानोत्पन्न करने की इच्छा हो उस समय उनको अपने विचार उसके अनुकूल बनाने चाहिये। जितने विचार अनुकूल होंगे उतनी ही संतान उनकी इच्छा के अनुकूल होगी। उस समय की अवधि का उल्लेख पुस्तकों में मिलता है वह न्यून से न्यून तीन दिन है और अधिक से अधिक एक वर्ष लिखा है। इतिहास में यह समय १२ वर्ष तक भी मिलता है। इस लेख में मैं पाठकों की भेंट वही लेख करना चाहता हूँ। जिसमें इस समय का विधान है।

(१) माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाभान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शांति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता, सभ्यता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्न-पानादि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिस से रजस, वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुण युक्त हों।

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास २ के आदि में

इसमें महर्षि दयानन्द जी ने गर्भाधान से पूर्व पाठ लिखा है और उसके साथ भोजनादि का भी विधान किया है।

(२) अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रम्॥ ११
संवत्सरं वैक ऋषिर्जायत इति॥ १२
आश्वलायन गृह्य सूत्र १। ८

इस पाठ में तीन अथवा १२ रात ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने का विधान करके पश्चात् एक वर्ष का विकल्प भी लिखा है, एक वर्ष ब्रह्मचारी होने से एक ऋषि पुत्र उत्पन्न होता है।

(३) तावुभौ तत्प्रभृति त्रिरात्रमक्षार लवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयीताम्। गोभिल गृ० २, ३, १५।

वर वधू विवाह क्रिया से तीन रात पर्यन्त लवण, क्षार, छोड़ कर भोजन करें ब्रह्मचर्य व्रत से रहें भूमि पर शयन करें।

टीकाकार ने अक्षार लवण पर—

गोक्षीरं गोघृतं चैव धान्यं मुद्गास्तिला यवाः।
अक्षारलवणा ह्येते क्षाराश्चान्यैः प्रकीर्त्तिताः ॥

अर्थात् गोघृत, गोक्षीर, धान्य, मूंग, तिल यव, अक्षार लवण हैं अन्य क्षार लवण हैं।

ऊर्ध्वं त्रिरात्रात् संभव इत्येके। गोभिल गृ० २,५,७

तीन रात के पश्चात् गर्भाधान किया जाय यह कई ऋषि मानते हैं।

(४) संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरन्तो द्वादशरात्र (त्रिरात्रमेक रात्रं) वा ॥ मानव गृह्य सूत्र १,१४,१४

एक, तीन, बारह रात तक ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करके अथवा एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रह कर गर्भाधान करे।

(५) त्रिरात्रमुभयोरधः शय्या ब्रह्मचर्यं क्षार लवण-, वर्जनं च। आपस्तम्बीय गृ० सू० ३, ५, ८

स्त्री पुरुष दोनों तीन रात पर्यन्त भूमि पर शयन करें, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें और लवण तथा क्षार का प्रयोग न करें।

(६) त्रिरात्रं व्रतम्। हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र १, २३, १०

तीन रात व्रत करके गर्भाधान करे।

(७) संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरतः द्वादशरात्रं वा। वाराह गृह्य सूत्र खंड १८

१२ रात वा १ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके गर्भाधान करे।

(८) संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरतो द्वादशरात्रीः षट् तिस्र एकां वा ॥ काठक गृ० सूत्र ३०१

इस पर २ टीकाएँ हैं, एक विस्तार से है, द्वितीय संक्षेप से है। मैं वह भी लिखना उचित समझता हूँ।

(क) ब्रह्मचर्यममैथुनं चरित्वा गर्भाधानं कार्यमिति। तत्पौर्णमास्याममावस्यायां न मैथुनं कर्तव्यमिति च संकल्पः। एकैककर्तृकोऽत्र व्रतम् संवत्सरं प्रथमः कल्पः। यौवनमदस्यातिशयात्तु अनुकल्पेनापत्कालो विकल्पः। द्वादशरात्रीः षटतिस्र एकांवेति।

(ख) संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरतो। विकल्पो वयो विशेषेणौत्सुक्यापेक्षया।

इसका भावार्थ यही है, प्रथम तो एक वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत करके गर्भाधान करना चाहिये यदि यौवनावस्था वा विषयी होने से कोई ऐसा न कर सके तो १२, ६ तीन रात्रो का व्रत करे अन्यथा एक का ही करे।

(९) अथ यदि कामयेत श्रोत्रियं जनयेयमित्या रुंधत्युपस्थानात्कृत्वा त्रिरात्रमक्षारलवणावशायिनौ ब्रह्मचारिणावासाते ॥ ६ ॥

अहतानां वाससां परिधानं सायंप्रातश्चालंकरणमिषुप्रतोदयोश्च धारणमग्निपरिचर्यां च चतुर्थ्यां पक्वहोम उपसंवेशनं च ॥ ११ ॥

अथ यदि कामयेतानूचानं जनयेयमिति द्वादशरात्रमेतद्व्रतं चरेत ॥ १२ ॥

व्रतांते पक्व होम उपसंवेशनं च ॥ १३ ॥

अथ यदि कामयेत ऋषिकल्पं जनयेयमिति मासमेतद् व्रतं चरेत ॥ १४ ॥

व्रतांते पक्व होम उपसंवेशनं च ॥ १५ ॥

अथ यदि कामयेत भ्रूणं जनयेयमिति चतुरो मासानेतद् व्रतं चरेत ॥ १६ ॥

व्रतांते पक्व होमउपसंवेशनं च ॥ १७ ॥

अथ यदि कामयेत ऋषिं जनयेयमिति षण्मा-

सानेतद् व्रतं चरेत ।। १८ ।।

व्रतांते पक्व होम उपसवेशनं च ।। १६ ।।

अथ यदि कामयेत देवं जनयेयमिति संवत्सरमेतद् व्रतं चरेत ।। २० ।।

व्रतांते पक्व होम उपसंवेशनं च ।। २१ ।।

वोधायन गृ० सूत्र १०७

इसमें प्रथम अरुन्धति दर्शन से विवाह के समय का वर्णन है पश्चात चतुर्थ कर्म भी है, जिससे तीन दिन का व्रत विधान किया है, पश्चात् हवन करके गर्भाधान का विधान किया है। इसका क्रम निम्न प्रकार है—

जिसकी कामना हो, श्रोत्रिय पुत्रोत्पन्न हो, वह तीन दिन व्रत करके हवन करके गर्भाधान करे।

,,	,,	अनूचान	,,	,, बारह	,,	,,	,,
,,	,,	ऋषिकल्प	,,	,, एक मास		,,	,,
,,	,,	भ्रूण	,,	,, चार	,,	,,	,,
,,	,,	ऋषि	,,	,, छः	,,	,,	,,
,,	,,	देवं	,,	,, एक वर्ष		,,	,,

इसमें प्रश्न होता है श्रोत्रिय, अनूचान, ऋषिकल्प, भ्रूण, ऋषि, देव, क्या हैं।

इसका उत्तर स्वयं सूत्रकार ने लिखा है।

उपनीतमात्रो व्रतानुचारी वेदानां किंचिदधीत्य ब्राह्मणः ।। २ ।।

एकां शाखामधीत्य श्रोत्रियः ।। ३ ।।

अंगाग्याप्यनुचानः ।। ४ ।।

कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः ।। ५ ।।

सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः ।।

चतुर्वेदाद् ऋषिः ।।७।। अतः ऊर्ध्वं देवः ।।८।।

वोधायन गृ० सू०। १, ७

अर्थ—यज्ञोपवीत धारण करके व्रताचारी होकर वेद को कुछ पढ़े वह ब्राह्मण है इसी व्रत से एक शाखा पढ़े वह श्रोत्रिय होता है।

,, ,, अंग भी पढ़े ,, अनूचान कहलाता है

,, ,, कल्प ,, ,, ऋषि कल्प कहलाता है

,, ,, सूत्र प्रवचन पढ़ने वाला भ्रूण कहलाता है।

जो चार वेद पढ़े वह ऋषि होता है।

इसके आगे पढ़ने वाला देव कहा जाता है।

इन सब उद्धृत पाठों का भाव एक दिन से एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का विधान है। न्यून से न्यून एक दिन है और अधिक से अधिक एक वर्ष है। इसमें भी तीन दिन का विधान प्रायः सब सूत्रकार करते हैं इसलिये महर्षि का कथन कि गर्भाधान से पूर्व···वर्णन उचित ही है।

महाभारत में सौप्तिक पर्व में कृष्ण जी ने अश्वत्थामा का वर्णन करते हुए कथन किया है, वहां यह पाठ है।

ब्रह्मचर्यं महद्घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय योमया तपसार्जिता ।। ३० ।।
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योचजायत।
सनत् कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ।।३१।

सौप्तिक पर्व अध्याय १२

सौप्तिक पर्व में यह उस समय का वर्णन है जब कि अश्वत्थामा ने रात को आक्रमण करके धृष्टद्युम्नादि को मार दिया था। उस समय कृष्ण जी ने कहा है। एक बार अश्वत्थामा ने मुझ से सुदर्शनचक्र मांगो था। मैंने उसे कहा था यदि आप उसे उठालें तो लेलें, परन्तु यत्न करने पर भी अश्वत्थामा उसे उठा न सके। तब कृष्ण जी

योग तत्व

(श्री गोपाल जी बी० ए० गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ)

गत लेख में यह दिखलाया गया था कि चित्त की वृत्तियोंके रोकने के दो ही साधन हैं । अभ्यास और वैराग्य । और इन दोनों के लक्षण किये गये थे । अब यहां यह बतलाना है कि अभ्यास किन वस्तुओं से किया जावे ।

योगदर्शन के अन्दर वृत्तियों के रोकने में कुछ रुकावटें बतलाई गई हैं वे रुकावटें निम्न हैं ।

व्याधि—शरीर का स्वस्थ्य न रहना ।

समान—दूसरे की वस्तुओं को अपहरण करना

संशय—निश्चयात्मक न होना । प्रत्येक बात में शक करते रहना ।

प्रमाद—आज का काम कल पर छोड़ देना ।

आलस्य—कर्तव्य पालन में सुस्ती दिखलाना ।

आवरति—उलटा समझना ।

भ्रान्तिदशन—भ्रम में रहना ।

प्रलब्ध भूमिकत्व—उद्देश के प्राप्त न होने पर हिम्मत हार बैठना ।

अनवस्थत्व—डांवा डोल तबीयत का बने रहना

यह सब विक्षेप है, पूर्व इसके मनुष्य योग में प्रवृत हो । इनके दूर करने का सबसे पूर्व अभ्यास करना चाहिये । अब दूर कैसे हों । अब इस का उपाय बतलाते हैं ।

ने कहा था, मेरे सुपुत्र प्रद्युम्न ने भी यह चक्र कभी नहीं मांगा है और उस प्रद्युम्न को मैंने हिमालय के पार्श्व में १२ वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्वक तप करके उत्पन्न किया था यही नहीं कि मैंने ही व्रत किया था मेरे साथ मेरी धर्म पत्नी रुक्मणी ने भी बारह वर्ष तप किया था, इससे सिद्ध है कि प्रद्युम्न के जन्म से पूर्व उसके माता पिता ने १२ वर्ष व्रत करके उसे उत्पन्न किया था । यही बात अनुशासन पर्व में भीष्म जी ने पुनः भी कही है ।

पंजाब में कुछ समय पूर्व यह रिवाज था कि विवाह के समय में वर वधू को खाट पर सोने नहीं देते थे वह भूमि पर ही सोते थे परन्तु इस समय नव शिक्षा के प्रभाव से तथा सुधार की दृष्टि से इस प्रथा को उठा दिया गया है । प्रतीत होता है वह प्रथा इस व्रतकी द्योतक थी । यह सत्य है, उस समय विवाह प्रायः बाल्यावस्थामें ही होते थे, इसलिये उस समय वह विवाह और यह प्रथा निष्प्रयोजन थी इसलिये उस प्रथा का उस रूप में न होना ही उत्तम है । परन्तु संतानोत्पत्ति से पूर्व दम्पति के लिये अपने आहार, व्यवहार तथा विचार को अनुकूल बनाना शास्त्र की मर्यादा है और सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि ने विधान किया है । इसलिये सद् गृहस्थों को इसका ध्यान रख कर अपने जीवन में लानेका यत्न करना चाहिये । इसी भावना से मैंने यह लेख लिखा है, आशा है पाठक इस विषय पर विचार करने का कष्ट सहन करेंगे ।

—

"तत् प्रतिषेधार्थं एकतत्वाभ्यासः"

इन का प्रतिवेध करने के लिये एक तत्व का अभ्यास किया जावे, फिर कुछ अभ्यास बतलाये गये हैं, वे निम्न हैं।

पहला अभ्यास

"मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुख पुण्या पुण्यानां भावनात् चित्त प्रसादनम्"?

अर्थात् सुखी आदमियों में सरल मित्र भाव से रहे। दुखी आदमियों से सरल करुणा का वर्ताव करे पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न हो। पापियों से घृणा न हो प्रत्युत उनकी उपेक्षा करें, यह अभ्यास माननीय है।

मन के शुद्ध होने पर शरीर के रोग स्वयं दूर हो जाते हैं

दूसरा अभ्यास

"प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य"

प्राणों को बड़े वेग से बाहर अथवा अन्दर फेंके इसे योग की परिभाषा में भस्त्रा प्राणायाम कहते हैं। प्रातः काल सूर्य उदय के समय खुली हवा में आसन जमा कर १५ मिनट प्रतिदिन यह प्राणायाम करे, तो ६ महीने में उसके शरीर का ढांचा बदल जावेगा और उसके मुख पर दिव्य ज्योति दिखलाई देगी।

तीसरा अभ्यास

"वीतरागविषयं वा चित्तम्"

बीत राग महात्माओं के जीवन चरित्र का पाठ कम से कम एक घन्टा अवश्य करे, उससे भी मन निर्मल होगा और उसकी विक्षिप्ता दूर होगी।

चौथा अभ्यास

"यथाभिमत ध्यानात् वा"

जो वस्तु मनुष्य को अधिक रुचिकर हो यदि उस में भी निष्काम भाव से वह जुट जावे तो उससे भी उसे शान्ति प्राप्त हो सकती है और वही वात उपरोक्त अन्त रूपों को दूर करने में सहायक हो सकती है इनके अतिरिक्त ऋषि ने और भी अनेक छोटे २ अध्याय लिखे हैं, परन्तु जो सरल तथा सुबोध अध्याय थे, उन्हें यहां उल्लेख कर दिया गया है।

यह अभ्यास प्रारम्भिक है। यह योगारूढ़ होने के लिये पहली सीढ़ी है, यदि जिज्ञासु इनका सम्यक्तया अभ्यास करले तो उसके लिए आगे का रास्ता खुल जावेगा।

अब प्रारम्भिक वैराग्य का विधान किया जाता है।

किसी वस्तु में सकाम बुद्धि न रखी जावे कर्तव्य परायण हो अपने धर्म का यथावत् पालन करना ही सच्चा वैराग्य है।

"समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः"

शत्रु और मित्र में समबुद्धि रखना और मानापमान के झन्झट में न पड़कर अपने कर्तव्य का निष्काम बुद्धि से पालन करना ही सच्चा और वास्तविक वैराग्य है। कपड़े रंग लेने, या नग्न घूमना, सीखों पर सोना, गङ्गा के किनारे धूनी जमाये लोगों को ठगना अपने शरीर को कृश कर लोगों से रुपया ऐंठने के लिये पाखण्ड करना ऐसा वैराग्य योगदर्शन को अभिप्रेत नहीं इस लिये अगले लेख में अभ्यास और वैराग्य को और स्पष्ट करेंगे।

वैदिक युग का दूसरा नाम विमान युग होना चाहिये

(ले०—श्री राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी बड़ौदा)

वैदिक युग का दूसरा नाम विमान-युग क्यों हो। उसके लिये कुछ हेतु और एक वेद मंत्र प्रस्तुत करूँगा।

विदित हो कि पंजाब, राजपूताना, गुजरात तथा भारत के सब प्रान्तों में उन उन प्रान्तों की निज भाषाओं में जो जो बाल कहानियां आज तक चालू हैं उन सब में "किसी हिन्दू राजे वा उड़न खटोले पर चढ़ कर सात समुद्र पार जाने की चर्चा आती है।"

इस उड़न खटोले के अनेक नाम चालू प्रांतीय भाषाओं में हैं। पर "राजा" और "दूसरा उड़न खटोले" का पर्य्याय शब्द ज़रूर मिलने से Folklore के नियम अनुसार प्राचीन हिन्दू राजे भारत के सब प्रान्तों के विमान रखते थे।

पौराणिक कथाओंमें Personal Airships वा निजी विमानों की चर्चा हम पाते हैं। जैसे सरस्वती देवी आर्य्या का छोटा विमान जो था उसके माथे पर मोर पक्षि का चिह्न था। इसी प्रकार विष्णु देव जी के विमान पर Eagle वा गरुड़ पक्षि का चिह्न था वा उस आकार का वह विमान होगा।

पुराणों में सर्वत्र आर्य्य-महा-पुरुष वा देवता आकाश से विमान द्वारा बम्ब वृष्टि नहीं किन्तु पुष्प वृष्टि किया करते थे। कवि सम्राट श्री पूज्य कालिदास जी के नाटकों में से एक में एक आर्य्य रानी पर जो विमान के पुष्प किसी कीले के साथ आकाश से आकर गिरे तो वह आर्य्या देवी स्वर्ग सिधार गई। यह बात भी विमान संम्बन्धी ही है।

पंजाब में जब कोई हिन्दू वृद्ध पुरुष पौत्र वाला आज कल भी मर जाता है तो हिन्दू बिरादरी की तरफ से तीन या चार घण्टे उसकी अर्थी को विमान में बिठने के लिये लग जाते हैं। उस विमान में कितनी सुन्दर झंडियां लगती हैं और उसका घाट किसी विमान के रूप का होता है। पर विद्युत पंखे नहीं होनेसे वह आजकल उड़ नहीं सकता। पुराने काल में इस सच्ची घटना से यह सिद्ध होता है कि आर्य्य वा हिन्दू वृद्ध पुरुष वा स्त्री घर से श्मशान भूमि तक विमान (airship) वा उड़न खटोले में पंजाब में ले जाते होंगे।

आज कल मैं एक नई अतिउत्तम पुस्तक पढ़ रहा हूँ। उसका शुभ नाम—

वैदिक सम्पत्ति

'केरल की सुधि कौन ले?'

(ले०—श्री नारायणदेवजी सिद्धान्तभूषण, वैदिक-मिश्नरी)

मान्य पाठक वृन्द !

आज मैं आप महानुभावों की श्रद्धा केरल की आसन्न विपत्ति की ओर आकर्षित करता हूँ। आशा है इस पर अवश्य गौर करेंगे।

डाक्टर अम्बेदकर की हिन्दू धर्म त्याग की भीषणी ने उत्तर भारतीयों पर चाहे कुछ असर न किया हो लेकिन मद्रास प्रान्त के हरिजनों पर खासकर केरल की एक रियासत ट्रावनकोर पर महान आतंक छाया है। इस का कारण यह है कि सभी सम्प्रदाय के लोग शिक्षित हैं। संस्कृत के पंडित और अंग्रेज़ी के विद्वान हरिजनों में भी बहुत से हैं। ग्रेजुएट महिलायें भी बहुत हैं। अब भला बीसवीं शताब्दी में जहां पाश्चात्य शिक्षा और ईसाईयत का इतना जबरदस्त प्रचार है शिक्षित समुदाय हिन्दुओं के अत्याचार को क्योंकर सहन करेगा ? सदियों से हिन्दुओं ने

है। प्रत्येक आर्य्य समाजी तथा हिंदू विद्या प्रेमी को यह युग प्रवर्त्तक अनुसंधान पूर्ण रत्न ग्रन्थ पढ़ कर मुझ समान अपने ज्ञान में वृद्धि करनी चाहिये।

इस अपूर्व रत्न ग्रन्थ की भूमिका में उसके पूज्य स्वर्गीय विद्यानिधि ग्रन्थ कर्ता के निम्न शब्द भी हैं। इन से मेरा नम्र मत भेद भी है। कारण कि मैं तो वैदिक युग को विमान युग कहता हूँ। और पूज्य स्वर्गीय आर्य्य कवि रत्न श्री चौधरी नवलसिंह जी के पद मेरे कानों में अब तक भी गूंज रहे हैं।

"आकाश में चलते विमान थे,
उनकी कुल में हम ही तो हैं।
रेल देख हो गये हैरान,
अब ऐसी संतान हम ही हैं।"

(देखो सभा प्रसन्न श्री नवलसिंह कृत)

विदित हो कि वैदिक सम्पत्ति के पूज्य कर्त्ता जी के वह शब्द यह हैं:—जिनसे मेरा मत भेद है।

"जो लोग वेदों से रेल, मोटर, बिजली की रोशनी निकाल कर वर्तमान भौतिक उन्नति के साथ मेल मिलाते हैं वे गलती करते हैं।"

(वैदिक सम्पत्ति मूल भूमिका)

अब वेद भगवान् का एक मन्त्र विमान सम्बन्धी देकर यह तुच्छ लेख समाप्त किया जावेगा।

पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

विमान एष दिवो मध्यऽ आस्तऽआपप्रिवानोद सीऽअन्तरिक्षम्। स विश्वा चीरभि चष्टे घृता चीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्॥

यजु० अ० १७ मं० ५९

उनपर अत्याचार किया। अब गवर्नमेंण्ट की कृपा से शिक्षा प्राप्ति से पुरातन ग्रन्थों के अवलोकन से उनकी आखें खुल गई हैं। अब वे निमिष भरके लिये भी हिन्दूधर्ममें रहना नहीं चाहते। हिन्दू शब्द उनको बिच्छू काटने के समान प्रतीत हो रहा है।

आजकल ट्रावनकोरके अखवारोंमें ईलवों का हिन्दू धर्म परित्याग प्रश्न ही मुख्य है। इसके बाद विवाद में कई पृष्ठ काले कर डालते हैं और सभी एक आसन्न आपत्ति की या भूकंप की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यहां इनकी संख्या १६ लाख की है और अधिक भाग शिक्षितों का है। ये सामुहिक रूप से ईसाई बनना चाहते हैं क्योंकि ईसाईयों का तो यहाँ अखंड ताण्डव है। कोई पूछने वाला ही नहीं। कोई गांव ऐसा नहीं जहां गिरजा न हो कोई शहर ऐसा नहीं जहां हाई स्कूल न हों और एक दो सौ पादिरी न हों। सिर्फ हमारे शहर कोट्टयम में ही ईसाईयोंके २ हाईस्कूल २ गर्ल्स हाई स्कूल और सी० एम० एस कालेज है। यही कालेज केरल का प्रथम कालेज है और समस्त केरल में कोट्टयम ही शिक्षा का और ईसाईयों का मुख्य केन्द्र है। यहां सिर्फ हिन्दुओं का एक थर्ड फारम तक का अंग्रेज़ी स्कूल है। हिन्दू राज्य होने पर भी ईसाइयों के प्रचार से उनकी संख्या अधिक होगई है। अभी ये 'ईलव' भी ईसाई बन जायेंगे तो फिर हिन्दुओं का संहार ही समझ लीजिये। मुसलमान और ईसाई उनको अपनी ओर बुला रहे हैं। यहां ईजवों की एक एस, एम, डी, पी, योगम है। अखिल भारत कांग्रेस के बाद इसका संगठन ही भारत में सर्वश्रेष्ठ है। अभी इसमें यह विचार होरहा है कि प्रत्येक घर में आकर यह राय ली जाय की कौन २ ईसाई होने के लिये तैयार हैं। इस प्रकार सामूहिक परिवर्तनके लिये रिपोर्ट तैयार कर रहे हैं। अब देखिये कैसी परिस्थिति है। ट्रावनकोर वाले एक बैरिस्टर जोर्ज जोसफ ने नागपुर पबलिक कान्फ्रन्स में जो भाषण दिया था वह पाठकों को याद होगा। उन्हों ने बताया कि हम १०० वर्ष में भारत को ईसाई बना लेंगे। इनके प्रश्न का निवारण क्षेत्र प्रवेश से ही हटेगा। हिन्दुओं को समझाने के लिये कौन है? हरिजनों को कौन समझावें। सवर्ण हिन्दुओं में अधिक भाग क्षेत्र प्रवेश के पक्ष में है। लेकिन गवर्नमैन्ट का विचार अब तक न बदला। यदि इसके लिये तुरंत ही कुछ न किया जाय तो विपत्ति सिर पर है। फिर शुद्धि के लिये शुद्धि सभा जागे तो "अब पछतावे क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत" यही बात होगी। कई बातें हैं। सब के लिए स्थान पर्याप्त नहीं। मैं सार्वदेशिक सभा का, भा० हि० शुद्धि सभा का तथा अन्य धनी मानी आर्य हिन्दू सज्जनों का ध्यान आकर्षित करता हूँ और यह प्रार्थना करता हूँ कि तुरंत ही कुछ अधिकारी डेपूटेशन लेकर ट्रावनकोर आयें और परिस्थिति का अध्ययन करें और उचित कार्य करें। अन्यथा हमारा आर्य होना व्यर्थ है इस लिए केरल प्रचार के लिये दानवीरों को सार्वदेशिक सभा की तन मन धन से सहायता करनी चाहिये।

ईलव जाति और धर्म परिवर्तन

(लेखक—श्री० पं० नारायणदत्त जी सिद्धान्त भूषण, ट्रावनकोर)
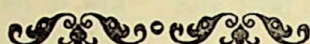
इस हिन्दू जाति में सदियों से धर्म के नाम पर अनेक अत्याचार होते आ रहे हैं। उन अत्याचारों में से एक है छुआ छूत (अस्पृश्यता)। इस अस्पृश्यता का प्रचार भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में है। परन्तु दक्षिण भारतान्तर्गत केरल देश (ट्रावनकोर, कोचिन, मलाबार) इस विषय में अधिक विशेषता रखता है। यहां कट्टर पंथियों का राज्य है। इसलिये अस्पृश्यता की भी व्यवस्था विचित्र है। यहां के धर्मध्वजियों ने अछूतों को अनेक श्रेणियों में विभक्त किया है। उनको सीधे मार्ग से चलने नहीं देते। उन अस्पृश्यों में कुछ ऐसी जातियां हैं जिनकों उच्च वर्णस्थों को मार्ग में देख कर लगभग २४ फ़ीट हटना पड़ता है। दूसरे कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनको ऐसे उच्च जाति वालों को देखकर लगभग ६० फ़ीट दूर भागना पड़ता है।

उपरोक्त अछूतों में जिनको २४ फ़ीट दूर भागने की व्यवस्था कर रक्खी है उनमें से एक है ईलव। ये लोग साधारणतया खेती मजदूरी आदि कड़ी मेहनत करने वाले हैं। केरलकी विभूति के श्रेय: को मुख्य भाग इनको देना चाहिये। इस देश की समृद्धि में इस "ईलव" जाति का भी पर्याप्त हाथ है। परन्तु फिर भी ये अछूत कहे जाते हैं। ब्राह्मणादि ऊँची क़ौम के लोग मार्ग में आ जावें तो सीधे मार्ग छोड़ कर इनको दूर हट जाना पड़ता है।

ईलवों की यह अवस्था देख कर कुछ उच्च वर्णस्थों का हृदय भी दयार्द्र हो उठा। वे इस अवस्था में परिवर्तन लाने के लिए कोशिश करने लगे। वे लोग इनके साथ मिल कर काम करने लगे।

ऐसे समय ईलव जाति में भी एक संन्यासी प्रादुर्भूत हुये। उनका नाम था "श्री नारायण गुरु स्वामी"। आप सच्चे संन्यासी थे। अहिंसा आदि सन्यास व्रत का यथा योग्य पालन करते थे। उन्होंने ईलव जाति की शोचनीय अवस्थाको हटाने की कोशिश की। स्थान २ पर आप के व्याख्यान हुये उनके उपदेशों से कई उच्च जातिस्थ भी प्रभावित हुये। परिणाम स्वरूप स्वामी के शिष्य बने।

इतना सब कुछ हुआ। फिर भी कट्टर पन्थी पौराणिकों की हृदय-हीनता में कोई परिवर्तन नहीं आया। उस संन्यासी के साथ श्रद्धा प्रेमसे पेश नहीं आये। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण निम्न लिखित घटना है। स्वामी महोदय रिक्शा में चढ़कर कहीं जा रहे थे। मार्ग मध्ये कोई कट्टर पन्थी उच्च जाति का व्यक्ति आ निकला। उस व्यक्ति ने मतान्धता में मस्त होकर उस संन्यासी से कहा "मार्ग से हट जा" अन्त में उनको विवश होना पड़ा। परिणाम स्वरूप गाड़ी से उतर कर उन्हें पैदल

जाना पड़ा।

ऐसा व्यवहार मतान्धों ने किया। अब भी योग्य व्यक्तियों के साथ मूर्खजन कहीं २ करते भी हैं। परन्तु उनके और अन्य परिष्कृत मानसों के परिश्रम के फल स्वरूप जाति और देश में जागृति आ गई। यथार्थ कुछ २ लोगों को समझ में भी आने लगा। "ईलव" लोगों ने श्री नारायण धर्म परिपालन योगम् S. N. D. P. yogam नामक एक संस्था को स्थापना की। जगह २ उसकी शाखाएं भी स्थापित होने लगी। इस प्रकार "ईलव" जाति कुछ संगठित भी हो गई। उस संगठन को क़ायम रखती हुई यह संस्था लगभग २५ वर्ष से कार्य कर रही है। प्रारम्भ समय की अपेक्षा वर्तमान में छूआ अच्छूत का झगड़ा बहुत कम है फिर भी गांवों में कट्टरपन्थी अब भी हैं। वे लोग इनको आगे आने नहीं देते। यद्यपि उनकी संख्या आधे से अधिक नहीं। फिर भी विष थोड़ा भी हानि पहुँचायेगा। "ईलव" जाति के लोग समाधिकार चाहते हैं। क्षेत्र विशेषादि के लिये वे लालायित हैं। एक ही मार्ग से स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करने की उत्कटाभिलाषा है। परन्तु अपनी करतूतों से कट्टर पन्थी बाज़ नहीं आते इसलिए विवश होकर निस्सहाय होकर—स्वतन्त्रता और सुख प्राप्ति का मार्ग खोज रहे थे।

ऐसे अवसर पर डाक्टर अम्बेदकर ने कहा कि अछूतों की उन्नति का कोई मार्ग है तो वह मत परिवर्तन—ईसाई व मुसलमान हो जाना—है। डाक्टर साहब के इन शब्दों ने "धधकती आग में घी का काम किया।"

"ईलव" लोग परिस्थिति से तंग हो ही रहे थे। ऐसे मौके पर धर्म परिवर्तन की बात सुनकर एक दम निश्चय कर लिया है कि हिंदू धर्म छोड़ना चाहिये और ईसाई मत स्वीकार करना चाहिए। नेता लोगों ने प्रायः बिना सोचे समझे धर्म परिवर्तन का विचार प्रकट किया परन्तु साधारण जनता तो उसके लिए तैयार नहीं। उनके हृदय में इस प्रस्ताव ने स्थान नहीं पाया। इसलिए कुछ लीडर नाम धारी लोग सिर से एड़ी तक का जोर लगा रहे हैं। गत जनवरी मास में साधारण सभा में प्रारम्भिक व्याख्यान देते हुए सभापति महोदय ने फ़रमाया कि शीघ्र ही प्रत्येक ईलव को हिंदू धर्म छोड़कर ईसाई धर्म में दाखिल होना चाहिए। इसी में हमारी उन्नति और कल्याण है।

परन्तु उनका यह विचार केवल मृग तृष्णा है। वे वहां भी आराम से नहीं रह सकेंगे। क्योंकि केरल के ईसाइयों के सिर पर भी छुआ-अच्छूत का भूत सवार है। जो अच्छूत (परयर पुलयर आदि) ईसाई मत स्वीकार करते हैं उनके साथ दूसरे ईसाई नहीं बैठते। खान पान का व्यवहार भी बहुत कम करते हैं। उनको पुनुक्रिस्यानि (नवीन ईसाई) के नाम से पुकारते हैं। उनके लिये अलग गिरजा तक बनवा रक्खा है। रोटी बेटी का सम्बन्ध भी नहीं करते। हिन्दू तो पूर्ववत् उन्हें अच्छूत समझ कर भगाते हैं। उन लोगों को नवीन नाम से ईसाई भी नहीं बुलाते। सब के सब पुराने नाम से पुकारते हैं। ईसाईयों का रक्खा नाम काग़ज़ों के पृष्ठों में रह जाता है।

इसलिये उनको वहां भी कोई अधिक स्वतन्त्रता नहीं मिलती। फिर भी हिन्दुओं के मध्य में रहने से अधिक आज़ादी सी दिखाई देती है। परन्तु उनका धर्म परिवर्तन उनके लिये और हिन्दू जाति को भारी पश्चात्ताप पैदा करेगा। निश्चय उनकी अवस्था "उभयतोभ्रष्ट" वाली होगी।

इसलिए उनको इस आफ़त से बचाना चाहिये। इस समय क्षेत्र प्रवेश मिल जाय तो सारा मामला समाप्त होजायगा। बातचीत से ऐसा ही स्पष्ट माल्म पड़ा। यह अधिकार दिलाना चाहिए। यह अन्य अधिकार प्राप्त जातियों का कर्तव्य है। मेरा विचार है कि एतदर्थ जगह २ सभा करके प्रस्ताव पास करके ट्रावनकोर और कोचिन गवर्मेन्ट के पास और महाराजाओं के पास पृथक भी भेजा जाय। देश के हिन्दू हितैषी डेप्यूटेशन लेकर केरल प्रान्त में आवें और अधिकारी और जनता से मिलें। इस से उन (ईलवों) को भी कुछ तसल्ली मिलेगी और सरकार अधिक ध्यान से और शीघ्र इस कार्य को करने के लिये बाधित होगी। सोचने विचारने के लिये अधिक समय न लेकर शीघ्र ही इसका प्रतिकार करना चाहिए।

सभापति का आसन किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए ?

(४)

संशोधन

परिभाषा

किसी प्रस्ताव में कोई परिवर्तन करना वा परिवर्तन का प्रस्ताव करना संशोधन कहलाता है।

संशोधन की रीति

निम्न रीति से प्रस्ताव में संशोधन होता है:-

(अ) कुछ शब्द निकाल देने से।

(ब) कुछ शब्द अंकित कर देने से।

(स) कुछ शब्द निकाल कर उनके स्थान पर दूसरे शब्द रख देने से।

(द) प्रस्ताव में कुछ शब्द बढ़ा देने से।

(य) प्रस्ताव के प्रथम शब्द 'कि' के आगे के सब शब्द निकाल देने और उनके स्थान में विषय से सम्बन्धित दूसरे शब्द रख देने से।

संशोधन के सम्बन्ध में कुछ मोटी २ बातें

(१) जब कोई प्रस्ताव नियमित रूप से मीटिङ्ग के सामने आ चुका हो तो कोई भी उपस्थित व्यक्ति उस पर संशोधन पेश कर सकता है।

प्रस्ताव का प्रस्तावकर्त्ता संशोधन का प्रस्ताव नहीं कर सकता। एक व्यक्ति एक समय में केवल एक ही संशोधन का प्रस्ताव कर सकता है।

(२) संशोधन का प्रस्ताव और समर्थन होना चाहिए और प्रधान को प्रत्येक प्रस्तावित और अनुमोदित संशोधन की व्याख्या करनी चाहिये।

कमेटियों में संशोधन के समर्थन की जरूरत नहीं होती।

(३) मूल प्रस्ताव से पूर्व संशोधन पर सम्मति ली जानी चाहिए। यदि संशोधन पास हो जाय तो संशोधित प्रस्ताव पर सम्मति ली जानी चाहिए। यदि संशोधन गिरजाय तो मूल प्रस्ताव पर सम्मति ली जानी चाहिए।

(४) यदि किसी व्यक्ति को अपने प्रस्तावित संशोधन से अधिक अच्छा संशोधन सूझ पड़े तो वह सभापति से उसकी वापसी की प्रेरणा कर सकता है और सभापति मीटिङ्ग की आज्ञा से संशोधन को वापस करलेनेकी आज्ञा देसकता है।

(५) कोई भी प्रस्ताव उस समय तक वापस नहीं लिया जा सकता जब तक संशोधन पर सम्मति न ले ली जाय।

(६) संशोधनों से पृथक रखने के लिए प्रस्ताव को बहुत सावधानता पूर्वक बनाना चाहिए।

कतिपय बारीक बातें

१ जब किसी प्रस्ताव में एक से अधिक संशोधनों का प्रस्ताव किया जाय तो सभापति उसी क्रम में जिसमें संशोधन प्रस्ताव के शब्दों को प्रभावित करते हों एक समय में प्रस्ताव के प्रथम शब्द से शुरू करके एक ही संशोधन को लेता है।

(२) जो संशोधन प्रस्ताव के पहले शब्द पर प्रभाव डालता हो वह अन्य सब संशोधनों से विशेषता रखने वाला समझा जाता है।

उदाहरण के लिए जो संशोधन प्रस्ताव के चौथे शब्द पर प्रभाव डालता हो वह पांचवें, पांचवां छठे और छठा सातवें संशोधन से विशेषता रखने वाला समझा जाता है। यही क्रम प्रस्ताव के अन्त तक के शब्दों के सम्बन्ध में रहता है। तिथियों और संख्याओं के सम्बन्ध में यह प्रथा है कि पहले अधिक से अधिक निकट की तिथि और संख्या पर विचार किया जाता है।

(३) प्रस्ताव का जो भाग संशोधित हो चुका हो बाद में उससे पूर्ववर्ती किसी भाग का भी संशोधन नहीं हो सकता है। सदस्यों को इस बात को विशेष ध्यान से देखना चाहिए कि उनके संशोधन ठीक २ क्रम में सभापति के पास पहुँच गए हैं वा नहीं।

(४) जब कोई संशोधन पेश किया जा चुका हो और बाद को यह मालूम हो कि कोई सदस्य प्रस्ताव के उस भाग के सम्बन्ध में संशोधन पेश करना चाहता है जिसके आगे के भाग पर संशोधन पेश किया गया है। तो प्रथा यह है कि मीटिङ्ग के सामने संशोधन कर्त्ता शिष्टाचार की दृष्टि से कुछ समय के लिये अपना संशोधन वापस ले लेता है। परन्तु ऐसा करने के लिये वह मजबूर नहीं किया जा सकता।

परन्तु यदि वह अपने संशोधन को वापस लेने से इनकार कर देवे तो उस दशा में उसे चुप रहना चाहिए और जब उस संशोधन पर सभापति सम्मति लेने लग जाय तब प्रस्ताव कर देना चाहिये कि प्रस्ताव या संशोधित प्रस्ताव पर जैसी अवस्था हो, पुनर्विचार किया जाय।

(५) जो संशोधन गिर जाता है उस पर जब तक आज्ञा न मिल जाय, दुबारा विचार नहीं हो सकता।

(६) मीटिङ्ग के प्रस्ताव करने पर किसी भी संशोधन पर पुनर्विचार हो सकता है।

(७) किसी भी प्रस्तावित संशोधन पर संशोधन पेश किया जा सकता है और संशोधन भी प्रस्ताव की नाईं संशोधित हो सकता है।

(८) संशोधनों के द्वारा जो शाब्दिक संशोधन जरूरी हो जाता है वह प्रधान या मन्त्री कर देता है।

हम इन सब बातों को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किये देते हैं।

उदाहरण

कल्पना करो सभा के किसी सदस्य ने एक प्रस्ताव किया है और वह उसके पक्ष में बोल चुका है। प्रस्ताव निम्न प्रकार है—

"अपने जीवन के अधिक महत्व पूर्ण कार्यों में सचाई लाते रहो। इससे तुम अपना हित सिद्ध करोगे।"

एक सदस्य इस प्रस्ताव का समर्थन करता है और बोलने का अपना अधिकार बाद के लिए सुरक्षित रख लेता है।

सभापति प्रस्ताव की व्याख्या करता है और प्रस्ताव को पढ़ता है। यदि प्रस्ताव पर बहस न हो तो तत्काल उस पर सम्मति ले लेता है। सम्मति का प्रकार यह होता है।

'जो प्रस्ताव के पक्ष में हों वे 'हां' कहें जो विरुद्ध हों वे 'नहीं' कहें।

सभापति हां वा ना अथवा वोटों के अनुसार जैसी अवस्था हो प्रश्न का निर्णय कर देता है।

इस उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि प्रस्ताव पर बहस होती है और कोई सदस्य प्रस्ताव में निम्न संशोधन पेश करता है—

वह प्रस्ताव करता हैं कि 'अधिक महत्व पूर्ण' ये शब्द प्रस्ताव में से निकाल दिये जावें। संशोधन का समर्थन हो जाने पर सभापति प्रस्ताव को इस प्रकार व्याख्या करता है:—

"मूल प्रस्ताव यह था (प्रस्ताव पढ़ता है) चूँकि संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव किया गया है कि 'अधिक महत्व पूर्ण' शब्द प्रस्ताव में से निकाल दिए जावें। अब प्रश्न यह है कि जिन शब्दों के निकाले जाने का प्रस्ताव किया गया है वे प्रस्ताव के अंग रहेंगे।

बहस जारी रहती है। जब खत्म हो जाती है तब सभापति इस पर सम्मति लेता है। ऐसा करते हुए वह उन शब्दों को जिनका उसने प्रश्न की व्याख्या करते हुए प्रयोग किया दुहराता है और यह जोड़ देता है।

"जो इस संशोधन के पक्ष में हों वे हां कहें जो विपक्ष में हों वे नहीं कहें।"

वह सम्मतियों के निर्णय के अनुसार घोषणा करता है कि संशोधन स्वीकृत है वा अस्वीकृत। यदि यह मालूम होजाय कि पक्ष में ज्यादा सम्मति हैं तब 'अधिक महत्व पूर्ण' शब्द नहीं निकाले जायेंगे और बाद को इन शब्दों में न परिवर्तन हो सकता है और न प्रस्ताव का इन शब्दों से पूर्व का कोई भाग संशोधित हो सकता है। यदि विपक्ष में ज्यादा सम्मति हों अर्थात् मीटिङ्ग का यह निर्णय हो कि 'अधिक महत्व पूर्ण' शब्द प्रस्ताव के अङ्ग नहीं रहेंगे तब सभापति द्वारा प्रस्ताव में से वे शब्द निकाल दिये जायँगे। हम यह माने लेते हैं कि 'अधिक महत्व पूर्ण' शब्द निकाल दिया गया है।

(ब)

वही वा कोई दूसरा सदस्य अपनी जगह से उठता है और निम्न संशोधन पेश करता है:—

"अपना शब्द के आगे 'और समाज का शब्द' जोड़ दिया जावे।"

आगे के संशोधनों के सम्बन्ध में वही कार्य्य क्रम रहेगा जो पहले में रहा है परन्तु सभापति अनावश्यक रीति से कोई बात दुहराई न जाय इस विचार से इस असूल का प्रयोग करता है:—

"अपना शब्द के आगे 'और समाज का' शब्द जोड़ देने का प्रस्ताव किया गया है। प्रश्न यह है कि प्रस्तावित शब्द जोड़ दिया जावे।"

यदि यह मालूम हो जाय कि बहुमत पक्ष में है तब सभापति द्वारा जोड़ दिये जावेंगे अन्यथा

नहीं।

हम माने लेते हैं कि शब्द जोड़ दिए गए हैं।

(स)

एक सदस्य एक दूसरा संशोधन पेश करता है। वह प्रस्ताव करता है कि 'करोगे' शब्द निकाल दिया जाये और इसके स्थानपर 'करते रहोगे' शब्द रख दिए जावें। सभापति निम्न रीति से प्रश्न की व्याख्या करता और उस पर सम्मति लेता है।

"करते रहोगे" शब्दों के अङ्कित कर देने के उद्देश्य से 'करोगे' शब्द निकाल देने का प्रस्ताव किया गया है। प्रश्न यह है कि जिन शब्दों के निकाल दिये जाने का प्रस्ताव किया गया है वे प्रस्ताव का अङ्ग रहेंगे।

यदि बहुपक्ष पहले शब्द के रखने के हक़ में हो तो संशोधन गिर जायगा और यदि हक़ में न हो तो पहले शब्द निकाल दिए जांयगे। इस रीति से प्रस्ताव में एक जगह खाली हो जायगी और सभापति दूसरे शब्दों पर सम्मति लेगा।

प्रश्न यह है कि प्रस्तावित शब्द अंकित कर दिए जावें। इन शब्दों के अंकित किए जाने का निश्चय हो जाने पर शब्द अंकित कर दिए जावेंगे अन्यथा कोई दूसरे शब्द निश्चय हो जाने पर अंकित हो जांयगे।

हम माने लेते है कि 'करते रहोगे' शब्द अंकित कर दिए गए हैं।

(द)

इसके बाद कोई दूसरा सदस्य प्रस्ताव के अन्त में निम्न शब्दों के बढ़ाए जाने का प्रस्ताव करता है:—

"और ऐसा करते हुए तुम संसार को भी श्रेष्ठ बनाते रहोगे।"

इन शब्दों का प्रस्ताव की भांति संशोधन हो सकता है। संशोधन हो जाने की अवस्था में सभापति इस पर निम्न प्रकार सम्मति लेता है।

"प्रश्न यह है कि अंकित किये जाने वाले शब्द संशोधित रूप में प्रस्ताव में बढ़ा दिए जावें।

यदि यह संशोधन गिर जाय तो प्रस्तावित प्रस्ताव में शब्द नहीं बढ़ाए जांयगे। यदि पास हो जाय तो सभापति प्रस्ताव के शब्द बढ़ायेगा।

हम माने लेते हैं कि उपर्युक्त शब्द बिना संशोधित रूप में बढ़ा दिए गए हैं।

अन्य संशोधनों का प्रस्ताव न होने की दशा में सभापति संशोधित प्रस्ताव को मीटिङ्ग को पढ़ कर सुनाता है। संशोधित प्रस्ताव इस प्रकार है:—

"अपने जीवन में सचाई लाते रहो। इससे तुम अपना और समाज का हित सिद्ध करते रहोगे और ऐसा करते हुए तुम संसार को भी श्रेष्ठ बनाते रहोगे।

इसके बाद सभापति इस संशोधित प्रस्ताव पर सम्मति लेगा।

यह प्रस्ताव भी अन्य प्रस्तावों के सदृश पास हो वा गिर सकता है। यदि पास हो जाय तो कार्य्य का वह भाग जो प्रस्ताव द्वारा होगा ख़त्म हो जायगा। हम माने लेते हैं कि प्रस्ताव पास हो गया है।

इस उदाहरण द्वारा हम चार भिन्न २ रीतियों के द्वारा संशोधित हो जाने के उपरान्त प्रस्ताव की अन्तिम गति देख चुके हैं। अर्थात (अ) शब्दोंके निकाल दिये जाने से (ब) शब्दों के अंकित कर दिये जाने से (स) शब्दों को निकाल कर उनके

स्थान में दूसरे शब्दों के रख दिए जाने से (द) शब्दों के बढ़ा दिए जाने से। अब केवल एक और रीति (य) शेष रह गई है जिसके द्वारा प्रस्ताव का संशोधन हो सकता है। कोई प्रस्ताव पहले शब्द के बाद के सब शब्दों के उन के स्थान में दूसरे शब्द रख दिये जाने के उद्देश्यसे निकाल दिए जाने से भी संशोधित हो सकता है।

इस प्रकार के संशोधन करने वाले व्यक्ति को उन शब्दों को जिन्हें वह अंकित करना चाहता हो मीटिङ्ग को पढ़कर सुनाना चाहिए (यदि मूल प्रस्ताव के शब्दों को निकालना अभीष्ट हो) और अपने संशोधन के सम्बन्ध में युक्तियां देनी चाहिए। संशोधन के अनुमोदित होजाने पर इससे पूर्व के उदाहरण में वर्णित रीति से सभापति को उस संशोधन की व्याख्या करनी चाहिए।

'मूल प्रस्ताव यह था (मूल प्रस्ताव पढ़ता है) चूँकि संशोधन के रूप में सब शब्द निकाल दिये जाने और उनके स्थान में इन शब्दों के रखे जाने (संशोधनको पढ़ता है) का प्रस्ताव किया गया है। प्रश्न यह है कि जिन शब्दों के निकाले जाने का प्रस्ताव किया गया है वे प्रस्ताव का अङ्ग रहेंगे।

सम्मति लेने पर यदि बहुमत शब्दों के निकाले जाने के पक्ष में न हो तो मूल प्रस्ताव के शब्द रहेंगे और बाद को उनमें कोई संशोधन नहीं हो सकेगा और हां उन में शब्द जोड़े जासकेंगे। यदि बहुमत पक्ष में हुआ तो शब्द निकाल दिये जायंगे और तब सभापति दूसरे प्रश्न की इस प्रकार व्याख्या करेगा।

"प्रश्न यह है कि प्रस्तावित शब्द अंकित कर दिए जावें।"

मूल प्रस्ताव के शब्दों की नाईं संशोधन के शब्दों का भी संशोधन हो सकता है। वे संशोधित हो सकते और संशोधित शब्द स्वीकृत वा अस्वीकृत भी हो सकते हैं। जब स्वीकृत हो जावें वा संशोधित रूप में स्वीकृत हो जाये तो मूल प्रस्ताव के शब्दों के स्थान में अंकित हो सकते हैं। और बाद में उनका संशोधन भी नहीं हो सकता है। हां इनमें कुछ शब्द जोड़े जा सकते हैं।

यदि अंकित किए जाने वाले शब्द अस्वीकृत हो जायँ तब मीटिङ्ग के सामने कुछ बाकी नहीं रहता है और कोई दूसरा प्रस्ताव पेश हो सकता है। संशोधन की इस रीति से (य) कोई प्रस्ताव ख़ारिज़ हो सकता है और कोई दूसरा बिल्कुल भिन्न उसके स्थान में रक्खा और मीटिङ्ग द्वारा स्वीकृत हो सकता है।

इस प्रकार (य) के संशोधन के सम्बन्ध में कार्यवाहि करने का सबसे आसान तरीक़ा यह है कि प्रस्ताव और संशोधन को पृथक् २ मान लिया जाय और पहले मूल प्रस्ताव पर कार्यवाहि की जाय। परन्तु प्रस्ताव और संशोधन दोनों के एक साथ पेश किए जाने पर कठिनाई उपस्थित हो जाती है। ऐसे अवसरों पर बड़ी सावधानता की ज़रूरत होती है।

प्रस्ताव पर पहले कार्यवाहि की जाय, इस बात का प्रस्ताव केवल सार्वजनिक सभाओं के उद्देश्य की दृष्टि में किया गया है जहां कार्यवाहि का बहुत छानबीन के साथ संचालन नहीं किया

जाता है। यह तरीका भी बहुत अच्छा और पूर्ण नहीं कहा जा सकता है परन्तु पहले संशोधनों पर कार्यवाहि करने और मूल प्रस्ताव को संशोधनों के भुगतान तक छोड़े रखने की प्रथा से ज्यादा अच्छा हैं।

पार्लियामेन्ट में ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाने पर सभापति संशोधन और प्रस्ताव के सम्बन्ध में बैठक के सदस्यों का भाव जानने के उद्देश्य से पहले प्रस्ताव के कुछ शब्दों को ले लेता है और सम्मति लेता है कि—

'इन शब्दों (शब्दों को पढ़ता है) के निकाले जाने का प्रस्ताव किया गया है इस उद्देश्य से कि उनके स्थान पर दूसरे शब्द रख दिये जावें।

प्रश्न यह है कि जिन शब्दों के निकाले जाने का प्रस्ताव किया गया है वे प्रस्ताव का अंग रहेंगे। यदि सम्मति अनुकूल हो तो शब्द रहेंगे और संशोधन गिर जायगा। इसके बाद प्रस्ताव के बाकी शब्दों पर विचार किया जायगा। अन्त में सभापति सम्मति लेगा कि—

'प्रस्ताव (या संशाधित प्रस्ताव) स्वीकार कर लिया जाय।'

यदि सम्मति प्रतिकूल हो तो प्रस्ताव गिर जायगा और संशोधन के शब्दों पर ठीक उसी भांति विचार किया जायगा जैसे कि मूल प्रस्ताव के शब्दों पर किया जाता है। अन्त में सभापति सम्मति इस प्रकार लेता है।

"जिन शब्दों के अंकित किए जाने का (वा संशोधित रूप में) प्रस्ताव किया गया है वे अंकित कर दिए जावें।"

जिन व्यक्तियों का पहले पहल (य) के ढग के संशोधनों से वास्ता पड़ा है वे तत्काल इस प्रस्ताव को नहीं समझ सकते हैं परन्तु किसी संगठन वा कौंसिल के सदस्य जो समय २ पर मीटिंगों में भाग लेते रहते हैं आसानी से समझ और उससे लाभ उठा सकते हैं।

अस्वीकारात्मक रीति

कोई संशोधन जो प्रस्ताव के बिल्कुल विरुद्ध हो, स्वीकार किया जाय वा न किया जाय इस बात का निर्णय सभापति स्वयं करता है। क्योंकि प्रत्येक संशाधन पर उसकी उपयोगिता की दृष्टि से ही विचार होना चाहिए।

कल्पना करो कि हमारे सामने एक यह प्रस्ताव है कि 'इस विषय को उपसमिति में भेजा जाय।' इस प्रस्ताव पर एक यह संशोधन आता है. कि 'में' के बाद 'न' बढ़ा दिया जाय। अर्थात् विषय उपसमिति में न भेजा जाय। ऐसी अवस्था में सभापति को चाहिए कि वह संशोधन को स्वीकार न करे और कह देवे कि विरुद्ध सम्मति दे देने पर संशोधन का उद्देश्य पूरा हो सकता है।

कल्पना करो एक दूसरा प्रस्ताव यह किया गया है कि 'प्रजातन्त्र शासन सर्व श्रेष्ठ शासन होता है' और इस पर संशोधन पेश किया गया है कि श्रेष्ठ शासन के आगे 'नहीं' शब्द बढ़ाया जाय। ऐसी अवस्था में सभापति को संशोधन स्वीकार करके मीटिङ्ग को अपने प्रजातन्त्र सम्बन्धी विरोध पर बल देने का अवसर देना चाहिए। इस प्रस्ताव के विरुद्ध सम्मति दे देने का सीधा साधा अर्थ यही हो सकता है कि सभा इस विषय पर अपनी सम्मति देने से इनकार करती है।

———

निशा-पथिक

कहानी—

(२)

(लेखक—रघुनाथ प्रसाद पाठक)

रिक्शा के उसके वासस्थान की ओर रवाना होते ही सत्याचरण की व्याकुलता कम होने लगी। परंतु उसी समय नाना प्रकार के विचार उसके मस्तिष्क पर अधिकार करने लग गये। वह सोचता था कि मैंने एक दुखी बहन की रक्षा तो की परन्तु उसके भविष्य का प्रबन्ध मुझे नहीं सूझ पड़ता है। यदि लड़की के स्थान में वह लड़का होती तो प्रबन्ध में विशेष कठिनाई न होती और समस्या सहज ही सुलझ जाती। मैं उसको विश्वनाथ बाबू के यहां नौकर रखा देता। यदि कनकम्मा को किसी परिवार में "आया" के रूप में नौकर करादूं तो कदाचित उसे बुरा न लगे क्योंकि वह उस वर्ग से सम्बन्धित प्रतीत होती है जिससे प्रायः रंगूनमें "आया" आती हैं। परन्तु कठिनाई यह है कि मैं यहाँ किसी से परिचित नहीं हूँ जो उसे अपने यहां नौकर रख लेवे। लड़की ईसाई अथवा मुसलमान मिश्नरियों के सुपुर्द की जा सकती है परन्तु ऐसा करना मेरे हिन्दू भावों, आदर्शों एवम् कनकम्मा के प्रति अन्याय होगा। मुझे निश्चय नहीं कि कनकम्मा ईसाई या मुसलमानों की शरण लेना पसन्द करेगी या नहीं।

इस प्रकार सोचते २ सत्याचरण अपने वास स्थान पर पहुँचा और २०० रुपये लेकर भद्रपुरुष के मकान को लौट गया और उस मोटे मद्रासी के हाथ में २००) रख कर कनकम्मा को मुक्त कर लिया।

जिस भद्रपुरुष ने सत्याचरण की सहायता की थी उनका नाम गोपाल चन्द्र चौधरी था। सत्याचरण ने उनसे पूछा—"महाशय! अब उसके सम्बन्ध में क्या करना चाहिये?"

गोपाल चन्द्र ने उत्तर दिया—

"रंगून में इन दक्षिणियों का एक बड़ा उपनिवेश है। कनकम्मा से पूछना चाहिए कि यहां कोई उसका परिचित वा सगा-सम्बन्धी है या नहीं"

पूछे जाने पर लड़की ने बतलाया कि रंगून में उसका कोई सगा सम्बन्धी नहीं है। परन्तु "काला बस्ती" में एक बुढ़िया है जिसे वह चाची कहती है। लड़की ने यह भी बतलाया कि वह बुढ़िया उसको केवल एक रात अपने पास रख सकेगी और कि वे लोग बहुत ग़रीब हैं। उसका चचा पक्का शराबी है और अधिक समय पर्यंत उसके पास रहने में उसे डर लगता है।

इसपर सत्याचरण ने कहा,

"मगर के मुँह में डाल देने के लिये तो हमने लड़की को शेर के मुंह में से नहीं निकाला है।"

गोपाल बाबू ने कहा,

"प्रिय भाई ! एक रात में तो वे लोग इसे खा नहीं सकते। एक या दो दिन के लिये इसे वहां जाने दीजिये।"

यह कहकर गोपाल बाबू कनकम्मा की ओर मुड़े और पूछा,

"क्या तुम उनके मकान को पहचान लोगी"

कनकम्मा ने उत्तर दिया, यदि मुझे वहाँ ले जाया गया तो ज़रूर पहचान लूंगी।"

तीनों व्यक्ति एक गाड़ी में बैठकर 'कच्चा बस्ती' पहुँचे। कनकम्मा ने एक झोंपड़े की ओर इशारा किया और बतलाया कि उस झोंपड़े में उसकी चाची रहती है। एक आदमी चटाई पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था वह उसक चचा प्रतीत होता था। कनकम्मा को देखते ही अपनी भाषा में कुछ कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ। उसी क्षण लगभग १०-१२ व्यक्ति वहां आकर जमा हो गये। कनकम्मा ने उस भीड़ में एक बूढ़ी स्त्री की ओर इशारा किया। वह उसकी चाची थी और वह बड़ी भयानक सूरत की स्त्री थी।

सत्याचरण ने कनकम्मा से कहा,

"पूछो यह तुम्हें रखने के लिये तय्यार हैं या नहीं ?"

लड़की ने बुढ़िया से बात चीत की। उत्तर प्रत्युत्तरमें तेलुगु शब्दों का बवंडर उठ खड़ा हुआ। जब बवंडर कुछ शान्त हुआ तब कनकम्मा ने सत्याचरण को बतलाया कि उसकी चाची उसे अपने पास रखनेके लिए तो तय्यार है किन्तु केवल दो दिन के लिए और यह भी कि भोजन व्यय के लिये ॥) वह बतौर पेशगी के चाहती है।

सत्याचरण ने तत्काल ॥) जेब से निकाल कर बुढ़िया के हाथ पर रख दिये।

"हम तुम्हें दो दिन बाद आकर ले जायेंगे", कनकम्मा को यह कहकर सत्याचरण और गोपाल बाबू वहां से लौट पड़े और एक रिक्शा में सवार हो गये।

सत्याचरण ने पीछे की ओर मुड़ कर देखा तो कनकम्मा को करुणा भरी दृष्टि से अपनी ओर टकटकी लगाए देखते हुए पाया। वह उस ग़रीब लड़की के लिये दुखी होने लगा। वह सोचने लगा कि उस की मुक्ति का इस प्रकार का प्रदर्शन करने के बाद हमें कनकम्मा को उस दुर्गन्धमय बिल में नहीं छोड़ना चाहिए था। ज़रूर उस बूढ़े शराबी ने उसे पीटना भी शुरु कर दिया होगा।

शहर के बड़े चौराहे पर पहुँच कर दोनों सज्जन रिक्शा से उतरे। गोपाल बाबू ने कहा,

"अब मैं जाता हूं।"

सत्य का हृदय उस समय भी नई समस्या से परिपूर्ण था। उसने पूछा,

"क्या हम दो दिन के भीतर लड़की के लिये किसी अच्छे निवास स्थान का प्रबन्ध नहीं कर सकते।"

गोपाल बाबू ने कहा,

"क्यों नहीं। हमारे पास पूरे दो दिन हैं, इस का अर्थ यह है कि हमारे निर्णय पर ४८ घंटे हैं। साम्राज्य तो इससे भी कम अर्सेमें बने और बिगड़े हैं।

सत्याचरण ने कहा,

"अगर आप सायं काल को अपने मकान पर रहें तो मैं विश्वनाथ बाबू के साथ आप के पास

आ जाऊँ।

सत्याचरण विश्वनाथ बाबू के साथ गोपाल बाबू के मकान पर नियत समय पर पहुँच गया। गोपाल बाबू ने सत्याचरण की तरफ देखा और कहा,

"उस कनकम्मा के लिये मैंने एक काम तलाश कर लिया है। यदि तुम उस स्थान पर उसे रखने में सहमत हुए तो वह उस के लिये बहुत उपयुक्त रहेगा।"

सत्याचरण के इस सम्बन्ध में कुछ अधिक विवरण माँगने पर गोपाल बाबू ने कहा,

"मेरे एक मित्र की पुत्री के लिये एक "आया" की जरूरत है।"ट्रेन्ड आया" यहाँ बड़ी २ तनख्वाहें माँगतीं हैं। २५) से कम पर तो वे बात भी नहीं करतीं। मेरा मित्र भोजन और निवास स्थान के अतिरिक्त कनकम्मा को १०) मासिक तक दे देगा। कनकम्मा को तुम वहां रख सकते हो। थोड़े दिनों में ही वह अपना काम सीख लेगी। स्थान सुरक्षित है, इस की मैं गारन्टी दे सकता हूँ। अपने माता पिता के यहां भी कदाचित वह ऐसी सुरक्षित नहीं रह सकती जैसे मेरे मित्र के यहाँ।"

विश्वनाथ बाबू ने कहा,

"मेरी सम्मति में लड़की को वहाँ रख देना चाहिए वह "आया"का काम सीख लेगी और भविष्य में अच्छा वेतन भी प्राप्त करने के योग्य हो जावेगी।"

गोपाल बाबू ने कहा,

"तब तो हमें "काला बस्ती" जाकर उसे ले आना चाहिए। इस समय तक वह काफी पिट चुकी होगी। तुम्हारे लिये यह सबक होना चाहिए कि भविष्य में इसप्रकार के किसी काम में मत पड़ना। इस संसार में पहले तुम्हें अपनी खबर लेनी चाहिए और दूसरों को अपनी खबर स्वयं लेने देना चाहिए।"

दूसरे दिन प्रातः तीनों सज्जन कनकम्मा को लेने "काला बस्ती" गये। कनकम्मा झोंपड़े के बाहर हथौड़ों से लोहे को पीट रही थी। सत्याचरण और उसके साथियों को पहचानते ही वह मुस्कराती हुई उठ खड़ी हुई और आगन्तुकों के आगमन की अपने रिश्तेदारों को सूचना देने के लिये घर के भीतर दौड़ी चली गई।

विश्वनाथ बाबू ने पूछा,

"कनकम्मा यही है न ? है तो युवती"

इतने में ही पास पड़ौसके स्त्री पुरुष पास-पड़ौस के झोंपड़ों में से निकलकर वहां जमा हो गए। बाबू लोग कनकम्मा को लेने आगए हैं यह खबर पास पड़ौस में फैल गई। वे लोग सत्याचरण की ओर इतनी उत्सुकता से देख रहे थे कि मारे शर्म के उसका मुँह रक्त वर्ण होगया था। वह अच्छी तरह समझ गया था कि वे लोग उसे लड़की का भावी पति समझते हैं।

कनकम्मा बाहर आई। इन चंद मिनटों में उसने कपड़े बदल लिये थे, हाथों की धूलि साफ़ कर ली थी। बालों में कंघी कर ली थी। पुरानी और फटी हुई साड़ी के बजाय पिछले दिन वाली लाल बार्डर की पीली साड़ी पहन ली थी। सम्भवतः चाची ने उसे विवाह के कुछ उपहार भी प्रदान किये थे। लड़की अपने हाथ में पीतल के दो बर्तन

और दो रंगीन साड़ियाँ लिये हुए थीं।

रंगून में तांगे में केवल तीन सवारियां बैठ सकती हैं। चूंकि अब वे ४ व्यक्ति थे इस लिये गोपाल बाबू ने ट्राम से चलने का प्रस्ताव किया। परन्तु विश्वनाथ बाबू को कनकम्मा के साथ एक ही गाड़ी में बैठना पसंद न था। इसलिये उन्हों ने यह कहते हुए "कि मैं ट्राम में जाऊंगा तुम गाड़ी में बैठ कर मेरे पीछे चले आओ। ट्राम के स्टेशन के सामने मैं तुम्हारा इन्तजार करूंगा, छतरी खोल कर लपक गये और दूसरों के बोलने की भी प्रतीक्षा न की।

कनकम्मा ने बड़ी प्रसन्नता से प्रत्येक से विदा ली। उसके हाव-भाव से स्पष्ट था कि वियोग के दुख से उसे ज़रा भी दुख न था।

स्टेशन के निकट पहुँचने पर विश्वनाथ बाबू प्रतीक्षा करते देख पड़े। वे गाड़ी से उतरे। कनकम्मा ने मुस्कराते हुए सत्याचरण से पूछा "क्या तुम्हारा मकान यहीं है" सत्याचरण को कहना पड़ा "मेरा मकान दूर है।" जो भद्रपुरुष तुम को "आया" के रूप में रखना चाहता है वह नजदीक ही रहता है।"

ग़रीब लड़की ने सत्याचरण की ओर देखा निराशा और आश्चर्य से उसका चेहरा बात की बात में निष्प्रभ हो गया। उसने पूछा,

"क्या तुम मुझे अपने पास नहीं रक्खोगे?"

कनकम्मा को इस निर्दयी जगत पर विश्वास नहीं रह गया था। अलक्षितभय उसकी ओर मुँह निकाले झाँक रहा था। उस अपरिचित व्यक्ति (सत्याचरण) के साथ रहने में उसको रक्षा संभव थी और वह पूर्णतः सत्याचरण पर अवलम्बित थी।

सत्याचरण के चेहरे पर पसीना छा गया। उसको सूझ नहीं पड़ा कि वह किस प्रकार लड़की पर यह स्पष्ट कर देवे कि............ऐसा होना नितांत असम्भव है। हृदय को थाम कर उसने कनकम्मा से कहा,

"मेरा परिवार यहां नहीं है इसलिए मुझे नौकरानी की जरूरत नहीं है। सम्प्रति तुम उस भद्रपुरुष के यहाँ काम करो, यदि तुम "आया" का काम सीख गई तो भविष्य में तुम्हें अधिक वेतन के अच्छे कार्य प्राप्त हो जायेंगे।"

कनकम्मा चुपचाप उदास खड़ी रही। सत्याचरण की युक्तियाँ उसे सन्तोष प्रदान नहीं कर सकीं।

वे तीनों उसे नये स्वामी के मकान पर छोड़ कर अपने २ घर चले गए।

सत्याचरण की अवस्था देखते ही बनती थी। उसका हृदय लज्जा और ग्लानि से परिपूर्ण था, वह सोचता था कैसी विचित्र स्थिति है। क्या सचमुच उसे मेरे साथ रहने की आशा थी? क्या वह बहुत निराश हुई? क्या मुझे उससे मिलना चाहिए या नहीं? परन्तु उससे बिल्कुल न मिलने से मैं क्योंकर बच सकूंगा? मैं उसका संरक्षक बन गया हूँ इसलिए मुझे कुछ हद तक उसकी देख-रेख करनी ही चाहिए। क्या कनकम्मा की अश्रुपूर्ण चितवन अर्थ शून्य थी? नहीं! नहीं!! उसमें शोक था, नैराश्य था और थी मेरे लिए तीव्र भर्त्सना।

प्रातः काल का समय सत्याचरण काम की

तलाश में व्यतीत किया करता था और सायंकाल का समय कनकम्मा से भेंट करने में। वह बड़ी अनिच्छा से कनकम्मा से मिलने जाया करता था। वह कनकम्मा को प्रायः दो बच्चों के साथ गली में इधर-उधर डोलते हुए देखा करता था। सत्याचरण को देखते ही हर्ष के मारे उसकी आँखें चमक जाया करती थीं और वह सब का छोड़कर सत्याचरण के पास आती और पूछती थी—"बाबू! तुम कुशल से तो हो? इस पर सत्याचरण अपने को बहुत अपराधी अनुभव करता था। उसने लड़की का कल्याण करने की चेष्टा की थी परन्तु इस चेष्टा से उसने लड़की के जीवन में महान् दुःख और निराशा का संचार कर दिया था। वह सोचता था कि मैंने क्यों असम्भव आशा का लड़की के हृदय में संचार किया है।

वह लड़की के स्वास्थ्य का समाचार पूछता और तत्काल उससे विदा ले लिया करता था। निर्दोष लड़की के भाग्य में कितना दुःख और बदा है इसकी कल्पना से उसका हृदय काँप उठता था। इस विचार से कि उसने एक भयंकर गति से उस की रक्षा की है उसे कुछ सांत्वना मिल जाया करती थी।

सत्याचरण ने काम प्राप्त करने की सिर तोड़ कोशिश की परन्तु दुर्भाग्य से सफलता न मिली। सफलता मिलती यदि उसके पास रिश्वत के लिए काफ़ी पैसा होता या काम प्राप्त करने का वह कौशल जानता होता। वह बड़ा दुःखी और चिंतित रहने लगा। उसका मेज़मान बड़ा सभ्य और सच्चरित्र व्यक्ति था। परन्तु फिर भी अनिश्चित काल के लिए उस पर आश्रित रहना सत्याचरण को सह्य न था। इस बलात् आश्रय ने भी उसके दुःख और चिंता को बढ़ा दिया था। इससे भी बुरी दशा उसकी होने को है इसका उसे पता न था। उसके मेज़बान को अपनी पुत्री की शादी के लिए लम्बे अर्से के लिए अपने घर जाना पड़ गया और उसे सत्याचरण का प्रबन्ध एक होटल में कर देना पड़ा। सत्याचरण को उसने एक जगह होटल म दिला दी। वह जगह बड़ी भयङ्कर थी। वह उसे देखकर रोया करता था। कलकत्ते में एक नहीं वरन् अनेकों कमरे उसके निर्णय पर थे। सवारी में मोटर थी। दुर्भाग्य! अब उसे एक तंग कमरे में अपरिचितों के साथ रहना पड़ता था।

एक दिन चाय पीने के बाद सायंकाल को वह बाहर निकला। उसके पैर उसे कनकम्मा के घर की ओर ले गये। लड़की अपने दो बच्चों के साथ गली में घूम रही थी। सत्याचरण उसके निकट गया और देखा कि वह बहुत पतली-दुबली हो गई है, उसकी आँखें निकल आई हैं।

अपने योग-क्षेम पूछे जाने से पूर्व ही सत्याचरण ने कनकम्मा से पूछा।

"तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? खाने को काफ़ी मिलता है या नहीं?"

कनकम्मा ने कहा—

"मैं अच्छी तरह से हूं, बाबू!"

मालकिन मुझे काफ़ी खाना देती है, परन्तु मेरा हृदय बहुत व्याकुल रहता है।

इस बात का उत्तर सत्याचरण के पास न था। वह कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा और इसके

बाद अपने नए पते की सूचना देकर वहां से चल दिया। उसने कनकम्मा से कहा, कि यदि किसी चीज़ की आवश्यकता हो तो वह कहला भेजे।

दूसरे समय उससे मिलने के लिये कनकम्मा होटल में गई। सत्याचरण उससे मिलने के लिये गली में उतरा। और पूछा,

"तुम यहाँ किस लिये आई हो ? क्या किसी चीज़ की ज़रूरत है ? कनकम्मा ने उत्तर दिया,

"नहीं बाबू। मैं आपका कुछ पैसा अदा करने आई हूँ। जो धन आपने मेरे ऊपर खर्च किया है मैं उसे धीरे २ आपको अदा कर देना चाहती हूँ। इससे अधिक भी मैं आपको देती, परन्तु मुझे कुछ कपड़े और बर्तनों की एवज़ में प्रतिमास अपनी चाची को अदा करना होता है। सत्याचरण ने पहले पैसा अस्वीकार कर देने का विचार किया परन्तु फिर उसने कुछ विचारके पश्चात् कि यदि कोई आदमी किसी अहसानसे मुक्त होना चाहता हो तो उस पर बलात् अहसान लादना उचित नहीं है—पैसा लेना स्वीकार कर लिया। अगले महीने में भी लड़की की ओर से उसे कुछ पैसा मिला। निम्न श्रेणी की अशिक्षित लड़की के आत्मसम्मान के इस ऊँचे भाव ने उसे सत्याचरण के हृदय में ऊँचा उठा दिया।

इस प्रकार तीन महीने व्यतीत होगए। सत्याचरण को किसी प्रकार का काम न मिला। सत्याचरण के पास जो पैसा शेष बचा था वह दिन प्रति दिन कम होने लग गया। खान-पान और रहन-सहन में भी उसे तंगी पड़ने लगी। बढ़ती हुई परेशानी और चिंता से उसका स्वास्थ्य गिर गया।

वह आसानी से कलकत्ता वापस जा सकता था, परन्तु चूँकि उसकी बहन इलाज के लिये स्विटज़रलैंड गई हुई थी इसलिये कलकत्ता जाना वह व्यर्थ समझता था। सचमुच विपत्तियाँ अकेली नहीं आती हैं। शनिवार की रात को दफ्तरों इत्यादि के लोग बहुत देर के बाद सोते हैं। होटल के लोगों में अधिक संख्या दफ्तर वालों की थी। वे लोग अधिक रात गये तक आमोद-प्रमोद में लीन रहे। नौकरों को भी होटल के दरवाजे इत्यादि बंद करने की सुध-बुध न रही। फलतः होटल में भयंकर चोरी हुई और सत्याचरण का सब कुछ चला गया और उसकी दशा भिखारी से भी बदतर हो गई।

विश्वनाथ बाबू ने सत्याचरण को होटल में रखते समय मैनेजर से तय कर दिया था कि वह जब तक सत्याचरण को कोई काम न मिल जाय बिल के पूरे पेमेन्ट पर बल न देवे।

चोरी के दूसरे दिन से ही मैनेजर और उसके साथियों के व्यवहार में अन्तर आ गया। वे लोग उससे घृणा और उसका अपमान करने लग गए। कभी चायमें दूध नदारद रहता था तो कभी शकर। नौकर न उसका बिछौना बिछाता था और न उसके कपड़े धोता था। शाम को दूसरे लोग चाय और मिठाई उड़ाते थे परन्तु उसे ठंडी और बिना दूध की चाय का प्याला मिलता था।

इसके बाद सत्याचरण के लिये होटल में खाना खाना असम्भव हो गया।

रिक्शा के किराये के लिए उसके पास पैसा

न था अतएव वह निरुद्देश के इधर-उधर सड़कों में घूमता रहता था। एक दिन घूमता २ वह कनकम्मा के मकान की ओर गया। उसे देखते ही कनकम्मा दौड़कर उसके पास आई और पूछा,

"उदास क्यों देख पड़ते हो। क्या तबीयत ख़राब है ?"

सत्याचरण ने कहा,

'तबीयत ख़राब नहीं है'

इस पर भी लड़की को विश्वास न हुआ। सत्याचरण के हाव-भाव और आकृति को देखते हुए विश्वास करना कठिन भी था। लड़की ने पुनः मालूम किया कि बाहर निकलने से पूर्व सत्याचरण ने कुछ खाया वा नहीं ?

इस बार सत्याचरण ने सच्चाई को छुपाने की चेष्टा न की। भूख और थकान के कारण वह गिरा ही चाहता था कि लड़की ताड़ गई और बोली,

'मेरे साथ आओ बाबू।'

सत्याचरण ठहर गया। वह न घर के मालिक से और न मालकिन से परिचित था अतः केवल इस आधार पर कि वह 'आया' का मित्र है मालिक के कमरे में प्रवेश करना और बैठना सत्याचरण को अच्छा प्रतीत नहीं होता था। परन्तु कनकम्मा ने बतलाया कि बच्चे के अतिरिक्त जो उसके संरक्षण में था घर के अन्य सब व्यक्ति सिनेमा देखने गए हैं। वे देर में लौटेंगे तथा वह और अन्य नौकर घर की चौकसी कर रहे हैं।

सत्याचरण इतना थक गया था कि वह और अधिक देर तक खड़ा नहीं रह सकता था। वह कनकम्मा के साथ मकान के भीतर दाख़िल हुआ। कनकम्मा भोजनशाला में गई और कुछ देर के उपरान्त वापस आई। उसके हाथ में भोजन से भरी हुई एक थाली थी। पास की दूकान से भोजन खरीद कर लाई थी। सत्याचरण के सामने थाली रखते हुए उसने कहा,

खाओ बाबू !

सत्याचरण बहुत भूखा था तो भी कनकम्मा से यह पूछ लेने के पूर्व कि उसे वह कैसे प्राप्त हुआ है वह खाना न छू सका। लड़की ने बताया कि उसने वह खाना अपने पैसे से ख़रीदा है। उसके मालिक का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। तब सत्याचरण ने तत्काल खाना शुरू कर दिया। पेट भर भोजन करने के बाद कुछ देर तक उसने कनकम्मा से बातचीत की और जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। कनकम्मा ने उससे दूसरे दिन आने को कहा और कहा कि वह खाना तैयार रक्खेगी। इस निमन्त्रण पर सत्याचरण को कुछ लज्जा अनुभव हुई। वह सोचने लगा कि यदि मैं खाना खाने के लिए प्रतिदिन यहां आऊँगा तो कदाचित मालिक या मालकिनको आपत्ति होगी। परन्तु कनकम्मा ने आग्रह किया।

उसने कहा—

"जब मैं खाने का मूल्य दे दूंगी तो वे नाराज़ क्यों होने लगेंगे : वे बहुत अच्छे आदमी हैं और उन्हें जल्दी क्रोध नहीं आता है। सत्याचरण को जीवन रखने के लिए खाना खाना ही था परन्तु होटल का खाना उसके लिए विष हो गया था। अतः उसे कनकम्मा का निमन्त्रण स्वीकार करना

पड़ा । लड़की ने थाली और लोटा उठाया और उन्हें भोजनशाला में ले गई । तत्काल सत्याचरण ने दूसरे कमरे में से अपनी ओर टकटकी लगाये लड़की को देखते हुए देखा । वह किसी रहस्य के उद्घाटन करने का यत्न कर रही थी । परन्तु उद्घाटन करना जानती न थी । उसे सत्याचरण से और कोई बात पूछने की हिम्मत न हुई ।

सत्याचरण लौट कर होटल में गया और शीघ्र ही उसे निश्चय हो गया कि कनकम्मा के निमंत्रण को अस्वीकार न करने में उसने अच्छा ही किया । ज्यों ही उसने अपने कमरे में प्रवेश किया त्यों ही नौकर ने आकर उसे नोटिस दिया । मैनेजर को एक हफ्ते का नोटिस देने के लिए दुख था। लगभग १००) जो उसकी ओर निकलते थे उसकी अदायगी करके एक हफ्ते के बाद उसे होटल छोड़ देना चाहिए । यदि वह तत्काल अदा कर देगा तो वे लोग उसे रहने की आज्ञा दे देंगे अन्यथा वह बाहर निकाल दिया जायगा और उसका सामान रख लिया जायगा। यद्यपि वह अधिक मूल्य का न था।

सत्याचरणने पहले उनका खाना खानेसे इन्कार कर दिया था परन्तु इस नोटिस के बाद उसे वहां एक क्षण के लिए भी ठहरना असम्भव अनुभव होता था। तत्काल वह वहां से चल दिया और उसने वह रात एक सार्वजनिक बाग़ में व्यतीत की ।

सुबह को स्नान और कपड़े बदलने के लिये होटल में गया। लोग चाय पी रहे थे। किसी ने भी उसकी बात न पूछी । मैनेजर यह मालूम करने के लिये कि उसे कुछ पैसा मिला या नहीं उसके कमरे में आया। सत्याचरण ने कहा,

"मैं पूरी २ कोशिश कर रहा हूँ परन्तु अभी तक पैसा नहीं मिला है ।"

मैनेज़र ने कहा,

"महाशय पूरी २ कोशिश करो मैं अदालत में जाना पसंद न करूँगा और शायद तुम भी नहीं ।"

सत्याचरण को ऐसा प्रतीत हुआ मानों उसका दिमाग़ अग्नि में जल रहा है। यह जगत बड़ी अद्भुत जगह है। कोई समय था वह इसी जगत में श्यामाचरण करोड़पति का पुत्र था। आज वही जगत है जिसमें केवल १००) के लिये एक मामूली मैनेजर से अपमानित हो रहा है । कोई समय था जब वह १००) अपने बाएं हाथ से फेंक दिया करता था ।

वह कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा । उसके बाद कपड़े बदल कर वह बाहर चला गया और थोड़ी देर के बाद कनकम्मा के मकान पर पहुँचा । कनकम्मा उसको देखतेही खाना लानेके लिये दौड़ी और जबतक उसने खाना खाया तबतक वह उसके पास खड़ी रही ।

लड़की ने पूछा,

"धन मिला या नहीं बाबू !"

सत्याचरण ने उत्तर दिया,

"नहीं ! यहां मैं अपरिचित हूँ पैसे का मेरा यहाँ कौन विश्वास कर सकता है।"

लड़की ने पूछा,

"घर को क्यों नहीं लिख देते हो ।"

सत्याचरण ने कहा,

"घर पर भी मेरा कोई नहीं जो पैसे से मेरी मदद कर सके ।"

कनकम्मा कुछ चिन्तित होने लगी। उसने पूछा

"क्या किसी दूसरे होटल में खाने का प्रबन्ध नहीं हो सकता है ?"

सत्याचरणको अब सब बातें सचसच बतलानी पड़ गई। अपनी दुर्गति का छिपाना उसे उचित न जान पड़ा। कनकम्मा को और कुछ कहना बाकी नहीं रह गया था। सत्याचरण भी अनमना होकर विदा मांगने लगा। वह सोचता था यदि मैं ज्यादा देर ठहरूंगा तो शायद लड़की का कुछ अहित हो जाय। मालिक और मालिकन भले हो सकते हैं परन्तु आखिरकार वे भी मनुष्य हैं।

कनकम्मा जीने के नीचे तक सत्याचरण के पीछे २ गई। तब उसने कहा,

"घबराओ मत, बाबू ! तुमने एक असहाय की सुधि ली है परमात्मा तुम्हारी सुधि लेगा। यह कह कर वह पीछे लौट आई।"

सत्याचरण को परमात्मा की दया में विश्वास नहीं था। वह सूखी हँसी हँसा और फिर अपने असीम क़दम रखने लग गया। बहुत रात गए वह होटल को लौटा और सो गया।

वह बाहर के कमरे में सो रहा था। बड़े तड़के दरवाजे पर किसीके शोरने उसे जगा दिया। कोई बहुत धीरे २ दरवाजे को खटखटा रहा था। वह उठा और दरवाजा खोला। कनकम्मा को अपने सामने खड़ा देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। दरवाजा बन्द करके खड़ा हो गया।

वह लड़की के चेहरे की ओर देखने लगा। लड़की ने नोटों का एक बण्डल हाथ में देकर कहा,

"यह लो, बाबू ! और अपने देश को चले जाओ। अब अधिक समय यहां मत ठहरो।"

सत्याचरण किंकर्तव्यविमूढ़ होकर लड़की की तरफ देखने लगा। इतनी बड़ी रक़म इतने थोड़े समय में इस ग़रीब लड़की को कहाँ प्राप्त हुई। उसने नोट गिने तो पूरे १५०) के पाए। उसने लड़की से पूछा,

"इतना धन तुम्हें कहाँ से मिला ?"

यह बात सत्याचरण पर प्रगट करने की लड़की की इच्छा न थी इसलिये कुछ देर वह चुपचाप खड़ी रही परन्तु सत्याचरण के प्रबल आग्रह पर उसने कहा,

"मैंने फिर अपने को उस मोटे मद्रासी के हाथ बेच दिया है। कल मैं उसके पास जाऊंगी।"

सत्याचरण की आँखों में आँसू भर आए। वह यह कहते हुए, "यह वापस लो ! मैं इन्हें अंगीकार न करूंगा लड़की के हाथमें नोट पकड़ाने लगा परन्तु कनकम्मा पहले ही जीने से उतरने लग गई थी। उसने रोते हुए कहा,

"परमात्मा मेरी खबर लेगा, बाबू ! मेरे लिए दुखी मत होओ।"

सत्याचरण उसे पकड़ने के लिए दौड़ा परन्तु वह पहलेही दौड़ गई थी। सत्याचरण मूर्तिवत कुछ देर खड़ा रहा इसके बाद वह जल्दीसे जीने से उतर कर नीचे आया और अपने चारों ओर देखने लग गया। सड़क पर कोई न था। लड़की लोप हो चुकी थी।

श्री डा० भगवानदासजी का असेम्बली में भाषण

गत १७ अप्रैल १६३६ को लैजिस्लेटिव असेम्बली में अपने 'हिंदू विवाह बिल' के सम्मति के लिये प्रचारित किये जानेके प्रस्ताव को कि १५ जुलाई १६३६ तक जनता की उस पर सम्मति प्राप्त करली जाय पेश करते हुए श्री डा० भगवानदास जी ने जो भाषण दिया था उसका अधिकांश भाग इस प्रकार है:—

यह बिल स्वतन्त्रता प्रदान करने वाला है। अपनी इच्छा के विरुद्ध अपनी जाति से बाहर शादी करने को यह किसी को मजबूर नहीं करता है। अपनी जातिसे बाहर शादी करने वाले व्यक्ति के साथ सामाजिक सम्बन्ध रखने के लिए भी यह बिल किसी को विवश नहीं करता है। परन्तु मुझे आशा है कि यदि इस हाउस के द्वारा यह बिल पास हो गया तो इसका एक प्रभाव यह होगा कि इस प्रकार के विवाह करने वाले व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा इस घोषणा के आधार पर कि उनकी कोई बिरादरी नहीं रही है—जाति-च्युत होने से बच जायेंगे। इस बिल का यह भी प्रभाव होगा कि इस प्रकार की पब्लिक घोषणायें भी बंद हो जायँगी क्योंकि घोषणा करने वाला बदनामी करने का अपराधी समझा जायगा। प्रचलित जात-पांत के मूल में कतिपय वैज्ञानिक असूल हैं। मैं आशा करता हूँ कि उन्हें बाद में विस्तार पूर्वक हाउस के सामने रक्खूँगा। आज मैं संक्षेप में एक असूल का उल्लेख करूँगा और वह यह है कि अन्तर्भोज और अन्तर्विवाह का प्रवेश बड़ी सावधानता पूर्वक किया जाना चाहिये। मुझे विश्वास है इस हाउस के मेरे वे सब मित्र जो चिकित्सा व्यवसाय से सम्बन्धित हैं मेरे इस कथन का समर्थन करेंगे कि मानव जाति की ६० प्रति शतक बीमारियां भोजन और विषय भोग की ग़लतियों के कारण होती हैं। विभिन्न जातियों के पारस्परिक अन्तर्भोज और अन्तर्विवाह के विरुद्ध प्रचलित अन्धविश्वास का कारण केवल इस चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी असूल का ठीक २ रीति से न समझना ही है।

भोजन की पवित्रता व्यक्तिगत और विवाह में स्वभाव की समता जातीय स्वास्थ्य की रक्षा करती है। इन दोनों वैज्ञानिक असूलों को ग़लत अर्थ लगाये जाने का फल यह हुआ है कि हिन्दू धर्म एक ऐसा भद्दा चित्र बन गया है जिसे हिंदू धर्म का प्रत्येक बाहरी दर्शक आश्चर्य और घृणा की दृष्टि से देखता है।

आज हिंदू धर्म लगभग ३००० जातियों और उप जातियों में बंट गया है जो रोटी-बेटी के व्यवहार में आपस में अस्पृश्य हैं। इसका कारण उन वैज्ञानिक असूलों का ठीक प्रकार से न समझना है जो अविवेक पूर्ण खाने और शादी से परहेज करने के आदर्श में सन्निहित थे। 'अविवेक पूर्ण' शब्द पर ज्यादा बल दिये जाने

मानवी एकता

(लेखक—एक अनुभवी पत्रकार)

यह बहस की जाती है कि संसार के विविध मतों में व्याप्त एकता के अभाव से मानवी एकता भयंकर रीति से छिन्न भिन्न हुई है। जहां कहीं कोई मत सुसंगठित रूप में आविर्भूत होता है वहीं यह दूसरे मतों के साथ भेद-भाव उत्पन्न कर देता है और वह उस कृत्रिम मजहबी प्रभुता को जन्म दे देता है जिसका अस्तित्व मानवी-एकता के लिये खतरा होता है। यह सचाई इतिहास के पृष्ठों में और आज भी वर्तमान जगत में ऐसी जाजल्वमान है कि अधार्मिक प्रेरणाओं और सांसारिक लाभ के उद्देश्यों से प्रचारित मतों की निस्सारता को लोगों को बल पूर्वक स्वीकार करना ही पड़ता है। निर्जीव मूर्तियों, अन्धविश्वासों, भयंकर अत्याचारों और अनाचारों के प्रचार पर आश्रित मत मानव-समाज की उन्नति में भयंकर रोड़ा सिद्ध हुए हैं। उन्होंने जातियों और राष्ट्रों को तबाह कर दिया है और उन्होंने मनुष्यों को मुक्त करने के बजाय दासता के बन्धनों में जकड़ दिया है। इसी वजह से संगठित मज़हब संसार के ऊपर अपने आधिपत्य को खो बैठे हैं। जब कोई संगठित मज़हब अपने कम संगठित और कम शक्तिशाली मज़हब पर विजय प्राप्ति का यत्न करता है तो वह धार्मिक जगत में अव्यवस्था उत्पन्न करके मानवी भ्रातृत्व का विनाश कर देता है।

सचाई और श्रेष्ठत्व के प्रति हृदय के द्वारों को खुला रखने के बजाय वह मिशनरी उत्साह और हथकंडों के द्वारा उनके विरुद्ध निर्मम प्रचार जारी रखता है और इस प्रकार मनुष्यों के नैतिक और आध्यातिमक उत्थान में योग देने से चूक जाता है। धर्म्मान्धता और पाखंड का अन्त नज़दीक है। तलवार के द्वारा धर्म्म के प्रचार को वर्तमान संसार कदापि सहन नहीं कर सकता। अतः यदि किसी मत को जीवित जागृत शक्ति के रूप में रहना हो तो उसे विरोध वा विवाद के नहीं, वरन् दृष्टिकोण की उदारता, आन्तरिक सौन्दर्य्य और पवित्रता के बल पर ही उसे ऐसा करना चाहिए। तब ही वह संघर्षमय मतों की अशान्त दुनियां को शान्ति प्रदान कर सकता है।

धर्म्म संघ जिस रूप में आज संसार के

को ज़रूरत है। 'सवर्ण विवाह' का वास्तविक अर्थ जाति से बाहर अथवा तथा कथित भिन्न २ जातियों में ही आपस में विवाह करना नहीं है वरन् भिन्न २ जातियों अथवा सम ज़ातियों में सम स्वभाव वाले व्यक्तियों के विवाह को 'सवर्ण' कहते हैं।

श्री डा० महोदय ने यह भी कहा कि उन सलाहों पर कि बिल में 'एक पत्नीवाद' तथा तलाक़ की सम्भावना की 'यदि बाद में स्वभाव में भिन्नता आजाय' रक्षा के लिये गुंजाइश रखनो चाहिये वे बाद में कुछ विचार पेश करेंगे।

——

सामने है, संसार के शिक्षित स्त्री-पुरुषों के एक बड़े भाग में व्याप्त नास्तिकता और भौतिकता के लिये बड़ी सीमा तक जिम्मेवार है ।

आज लोग बहुत से मतवादियों के संसर्ग में आध्यात्मिकता का उदात्त स्पर्श और वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं पाते हैं । इसके अतिरिक्त धर्म्माध्यक्ष श्रेणियों और वर्गों, पूँजी और श्रम, साम्राज्य और साम्यवाद के मध्य युद्ध में योग दे रहे हैं । यही एक मुख्य कारण है जिसकी वजह से धर्म्म संघ का पतन हो गया है और इसने महत्व को खो दिया है । वर्तमान जगत धार्मिक जीवन और उसकी उपादेयता की व्याख्या के लिये लालायित है । वह वर्तमान सभ्यता के अभिशापों से तत्काल मुक्ति की खोज में है । क्या धर्म्म वर्तमान जीवन की समस्याओं का मुक़ाबला करने का साहस रखता है ? वर्तमान धर्म्मोपदेष्टा के लिये जरूरी है कि वह वेदि से जिस सत्य का उपदेश करे अपने अमल से उसकी क्रियात्मकता का परिचय देवे । धर्म्म को प्रकाशमान बनाने वाली सब वस्तुओं का उसे प्रबल समर्थक होना चाहिए । उसे संसार को घोषणा करनी चाहिए कि परमात्मा को कोई जाति वा राष्ट्र विशेष प्रिय नहीं है । वह किसी पुस्तक या सिद्धान्त तक सीमित नहीं है वह किसी अकेले पैग़म्बर के रूप में दृश्यमान नहीं है । समस्त मनुष्य और प्राणी उसकी दृष्टि में समान हैं क्यों कि सब ही उसके बच्चे हैं । जहां तक भिन्न २ मतों का सम्बन्ध है यदि उदार भाव में धर्म्म का प्रचार किया जाय और सहिष्णुता की रक्षा की जाय तो निश्चय ही भिन्न भिन्न धर्म्मों में भ्रातृत्व पैदा होगा और उस भ्रातृत्व के द्वारा मनुष्य एकता और मित्रता के सम्मिलित सूत्रों को ज्ञात कर सकेगा ।

सामाजिक अधिकारों और प्रतिबन्धों के द्वारा भी मानवी-एकता संकुचित हो गई है । मजहब और सामाजिक प्रथा के नाम में लोग विशेष अधिकारों का दावा करते हैं और दूसरे लोगों पर जो उनसे हीन समझे जाते हैं अत्याचार करते हैं । भौतिक विशेषताओं, भाषाओं और रीति-रिवाज के भेद अनावश्यक और उपेक्षणीय चीजें हैं परन्तु कम पढ़े लिखे, रंग विद्वेषी और संकुचित हृदय वाले लोगों ने इन्हें अत्यधिक आवश्यक बना दिया है । लोग यह नहीं समझते हैं कि विभिन्नता कुदरत का प्रसार है उसका नियम नहीं है । 'एकता' उसका नियम है और यही नियम है जिसका मनुष्य को खुले और उदार हृदय से ज्ञान की दृढ़ खोज के द्वारा अध्ययन करना चाहिए ।

मनुष्य संस्कृति और उदार दृष्टि बिन्दु के अभावके कारण एक दूसरे को पराया समझते हैं ।

आस्तिक बनना तथा परमात्मा की प्राप्ति करना मानवी एकता का उच्चतम आदर्श है । इसी आदर्श में मानवी-एकता का रहस्य छुपा है और जातियों, मतों और राष्ट्रों को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक मामलों में इसी की खोज करने और अमल में लाने की आवश्यकता है ।

समाप्त

हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागपुर

के

सभापति श्री राजेन्द्रप्रसाद का भाषण
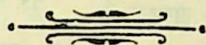
हिन्दी राष्ट्रभाषा बनने का दावा करती है। आज भी हिन्दी बोलने वालों और समझने वालों की संख्या १४, १५ करोड़ से कम नहीं है। जो हिंदी-भाषी नहीं हैं उनमें भी नागपुर, गुजरात, बरार, महाराष्ट्र और बंगाल जैसे प्रांतों में हिंदी समझने वालों की एक बड़ी संख्या है यद्यपि उनकी गिनती नहीं हुई है और करना कठिन भी है। मुसलमानों में, विशेषकर जो उत्तर भारत में बसते हैं, प्रायः सभी हिंदी समझते हैं। दक्षिण भारत के मुसलमान भी प्रायः हिंदी समझ और बोल लेते हैं और यद्यपि पंजाब में पंजाबी बोली जाती है तो भी वहां की अधिकांश जनता हिंदी समझ और बोल सकती है। इसलिए यदि हिंदी आज भी राष्ट्रभाषा होने का दावा करे तो यह स्वाभाविक ही है।

हिन्दी की व्यापक परिभाषा

मेरे कहने का तात्पर्य आप समझ गये होंगे कि मैं हिंदी की व्यापक परिभाषा कर रहा हूँ। यों तो विद्वानोंमें इस बात में मतभेद है कि हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाएँ हैं या एक। स्वर्गीय पंडित गोविन्द नारायण मिश्र जी, जो हिंदी और प्राकृत के प्रगाढ़ विद्वान् थे, उन्होंने द्वितीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में सभापति-पद से दिये गये अपने भाषण में इस बात पर बहुत जोर दिया था और बहुत से प्रमाण उपस्थित किये थे कि हिंदी और उर्दू एक नहीं, दो भाषाएँ हैं। दूसरी ओर स्वर्गीय बाबू राधाकृष्ण दास ने "हिंदी क्या है" शीर्षक निबन्ध में लिखा है, "हिंदुस्तान निवासी जन साधारण की भाषा का नाम हिंदी है। हिंदुस्तान की यदि कोई एक भाषा हो सकती है तो वह हिंदी है। यथार्थ में उर्दू और कुछ नहीं है, वह हिन्दी ही है।"

आज यह हिन्दी उर्दू का सवाल भले ही विकट रूप धारण कर रहा हो और मुसलमान 'हिन्दी' नाम से झिझक रहे हों, लेकिन थोड़ा पीछे की ओर देखने से पता चलता है कि यह हिन्दी नाम मुसलमानों ही का दिया हुआ है और यह नामकरण और इस नाम का प्रयोग भी किसी साधारण व्यक्ति ने नहीं, बल्कि अमीर खुसरो, मीर तकी, इन्शा और मलिक मुहम्मद जायसी जैसे विद्वानों ने किया है। अमीर खुसरो के विषय में उर्दू के सर्वमान्य श्रेष्ठ कवि गालिब ने लिखा है कि "हिन्दुस्तान के सखुनवरों में अमीर खुसरो देहलवी के सिवा कोई उस्ताद मुसल्लिमुस्सबूत नहीं हुआ" और "मैं अहले ज़बान का पैरो हूँ और हिन्दियों में सिवा अमीर खुसरो देहलवी के सब का मुनकिर हूँ।" इतना ही नहीं,

गालिब ने और भी कहा है—

"गालिब मेरे कलाम में क्योंकर मज़ा न हो,
पीता हूँ धो के खुसरुए शीरीं सखुन के पांव।"

गालिब ही नहीं, मौलाना शिबली भी अमीर खुसरो के विषय में लिखते हैं:—

'हिन्दुस्तान में छः सौ बरस से आज तक इस दर्जे का जामे कमालात नहीं पैदा हुआ और सच पूछो तो इस कदर मुख्तलिफ गूनागूं औसाफ़ के जामा ईरान और रूम की खाक ने भी हज़ारों बरस की मुद्दत में दो ही चार पैदा किए होंगे।"
वही खुसरो लिखते हैं—
"अरबी बोले आईना, फारसी बोले पाईना।
हिंदी बोले आरसी आए, मुँह देखे जो इसे बताए।"

जिनके विषय में सुप्रसिद्ध कवि ज़ौक़ ने लिखा है:—
न हुआ पर न हुआ मीर का अन्दाज़ नसीब।
ज़ौक़ यारों ने बहुत जोर गज़ल में मारा॥

और गालिब ने कहा है:—

"अपना भी यह यकीदा है बकौले मोमिन,
आप बेबहरा है जो मौतकिदे मीर नहीं।"

वही उर्दू के माने हुए, उस्ताद मीर तकी साहब हिन्दी शब्द का प्रयोग करते हैं:—
क्या जानूँ लोग कहते हैं किसको सुरूरे-कल्ब,
आया नहीं है लफ़्ज यह हिन्दी ज़बां के बीच।

सुप्रसिद्ध कवि इन्शा ने अपनी 'रानी केतकी की कहानी' में उस पुस्तक की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है:—

"जिसमें हिन्दवी छुट किसी और भाषा की पुट नहीं हो।"

उनसे भी प्राचीन "पदमावत" के प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने लिखा है:—

"अरबी तुरकी हिन्दवी, भाषा जेती आहिं,
जामें मारग प्रेम का सबै सराहैं ताहि।"

पर मैं इस झगड़े में न पड़कर कि व्याकरण और भाषा-विज्ञान के नियमों के अनुसार हिंदी और उर्दू एक हैं या नहीं, केवल व्यवहार रूप से कहना चाहता हूँ कि जितने लोग आपस में एक दूसरे के साथ उस भाषा में बातें कर सकते हैं जिसको हम हिंदी मानते हैं, चाहे वह व्याकरण के अनुसार शुद्ध हिंदी न भी हो और चाहे उसमें कितने ही शब्द ऐसे हों, जो हिंदी कोषों में न मिलते हों, वह सभी हमारे काम के लिए हिंदी भाषा-भाषी माने जा सकते हैं, और उन सबको मैंने अपनी उपरोक्त गिनती में शामिल कर लिया है। हिंदी राष्ट्रभाषा तभी हो सकती है जब हम उन सबको शामिल करेंगे। यदि ऐसा न करें तो जो हिंदी आज पुस्तकों में लिखी जाती है वह बहुत थोड़े ही लोगों की मातृभाषा है और हिंदी भाषियों की संख्या कितनी ही प्रान्तीय भाषा-भाषियों की संख्या से भी कम हो जाती है। उदाहरणार्थ, आप बिहार को ही लीजिए। वह हिन्दी-भाषा प्रान्त समझा जाता है और ठीक समझा जाता है, पर उस प्रान्त में कई बोलियां बोली जाती हैं। शाहाबाद, सारन, चम्पारन और मुजफ्फरपुर के कुछ हिस्सों में भोजपुरी बोली जाती है, दरभंगा, उत्तर मुंगेर, उत्तर भागलपुर, पूर्निया और मुजफ्फरपुर के उत्तरीय भागों में मैथिली बोली जाती है। पटना, गया, दक्षिण मुंगेर और छोटा नागपुर में मगही

बोला जाती है। तथा भागलपुर, संथाल परगना और मुंगेर के कुछ हिस्सों में छीकाछीकी बोली जाती है। इनमें से मथिली के सिवा किसी की अलग लिपि नहीं है, और न किसी का कोई लिखित साहित्य। ये सभी आज की पुस्तकों की हिंदी से बहुत अलग हैं और इन बोलियों के बोलने वालों में जो शिक्षित नहीं है, वह पुस्तकों की हिंदी पूरी तरह नहीं समझ सकता। मैं समझता हूँ कि संयुक्तप्रान्त में भी कई बोलियां बोली जातीं हैं और आजकी सुसंस्कृत हिंदी शायद ही किसी जिले में पूरी २ शुद्धता के साथ घरों में बोली जाती हो। हां, वह बिहार की बोलियों की अपेक्षा शुद्ध हिंदी के अधिक निकट अवश्य है। यद्यपि मुझे मध्य प्रदेश कीं बोलियों का ज्ञान अधिक नहीं है, पर यहां भी यही कैफियत होगी। राजपूताना भी हिन्दी-भाषी प्रान्त कहा जाता है, लेकिन उसमें भी कई अलग बोलियां हैं। दिल्ली और पंजाब के कुछ हिस्सों को भी हिन्दी भाषी प्रान्त कहते हैं, लेकिन वहां भी बोली दूसरी है। इसलिये जब हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखते हैं और विचार करते हैं तब हमको यह मानना ही पड़ता है कि जो कोई भी इससे काम ले सकता है, वह हिन्दी भाषा-भाषी है।

राष्ट्रभाषा से यह अभिप्राय है कि यह अन्तः-प्रान्तीय व्यापार और सार्वजनिक व्यवहार में सभी प्रांतों के रहने वालों द्वारा बरती जाय और कन्याकुमारी से बदरिकाश्रम तक और अटक से कटक तक सभी जगहों में एक दूसरे के साथ बातें करने और विचार विनिमय में काम में लाई जाय। अनेकानेक भेदप्रभेद होते हुए भी हिंदी इन शर्तों को पूरा करती है। तेलुगु, तामिल, मलयालम और कनाड़ी भाषाएँ ही केवल ऐसी हैं जिनका हिंदी के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है और जिनके बोलने वाले न हिन्दी समझ सकते हैं और न जिनको हिन्दी बोलनेवाले समझ सकते हैं। उनमें भी संस्कृत शब्दों की बहुलता रहने से थोड़े प्रयत्न से ही सफलता मिल सकती है। फिर भी उत्तर और पश्चिम भारत में जहां आर्य भाषाएँ बोली जाती है, हिन्दी का प्रचार आसान है और दक्षिण प्रदेशों में जहां द्रविड़ भाषाएँ प्रचलित हैं यह काम अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। राष्ट्रभाषा होने की अधिकाधिक योग्यता हिंदी में आनी और लानी चाहिये। इसके प्रचार के रास्ते में जो बाधायें हों उनको दूर करना चाहिए। हिन्दी की त्रुटियों को हटाकर उसे पूर्ण बनाना चाहिए। इस लिये स्वभावतः हिन्दी के रूप पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

हिन्दी का शब्द कोष

भाषा के दो अंग हैं—शब्द और व्याकरण। यह निर्विवाद है कि इस बात का निर्णय करना कि एक वाक्य विशेष किस भाषा का है इस पर इतना निर्भर नहीं है कि उस वाक्य के शब्द किस भाषा से लिये गये हैं अथवा उनकी उत्पत्ति कहां से और कैसे हुई है; बल्कि इसका निर्णय वाक्-शैली, विभक्तियों और क्रियापदों पर ही निर्भर है। उदाहरणार्थ एक छोटे वाक्य को लीजियेः—

"राम ने हुक्म दिया मोटर लाओ"

इस छोटे वाक्य में राम नाम है, हुक्म

अरबी शब्द है, 'दिया' क्रिया है, 'मोटर' अंग्रेज़ी शब्द है, और 'लाओ' हिंदी शब्द है। इसमें हिंदी अरबी और अंग्रेजी के शब्द आये हैं पर अंग्रेज़ी और अरबी के शब्द रहते हुए भी यह हिन्दी का ही वाक्य है। इसलिये अगर हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द आ जायें जो किसी दूसरी भाषा से लिये गये हैं तो वह हिन्दी ही रहेगी। जितनी ज़िन्दा भाषायें हैं वे अपने शब्द कोष को बराबर बढ़ाती जाती हैं और उनके कवि तथा लेखक दूसरी भाषा के नए नए शब्दों का प्रयोग अपनी रचना में करते हैं। बाहर की बात जाने दीजिए, हिन्दुस्तान की भी बँगला, मराठी, गुजराती आदि प्रायः सभी भाषाओं में दूसरी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है; उर्दू वाले भी इसमें किसी से पीछे नहीं हैं। उर्दू के महाकवि अकबर हिन्दी शब्दों को बड़ी आसानी से ले लिया करते थे। जैसे—

"स.खुन इनसे संवरता है सखुन से मैं संवरता हूँ।"

'आगोश से सिधारा मुझसे यूं कहने वाला"

उन्होंने कितनी आसानी से 'सँवारना' और 'सिधारना' शब्दों को अपना बना लिया है।

स्वा० मौलाना हाली ने लिखा है—"जब तक शायर की फिक्र में इतनी भी उपज न हो, जितनी एक बये में घोंसला बनाने की और मकड़ी में जाला पूरने की होती है, उसको हरगिज मुनासिब नहीं कि इस ख्यालेखाम में अपना वक्त ज़ाया करे बल्कि खुदा का शुक्र करना चाहिए कि उसके दिमाग में खलल नहीं।"

इसमें 'उपज' और 'पूरना' शब्द उन्होंने हिन्दी की बोलचाल से ले लिये हैं।

आज के युग में जब दुनियां से वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण दूरी और समय का भेद उठता जा रहा है। कोई भी भाषा दूसरी भाषाओं के सम्पर्क से अपने को अछूती नहीं रख सकती। यदि वह ऐसा प्रयत्न करे तो संसार की दौड़ में वह बहुत पीछे रह जायगी और उनके लिये उन्नति के दर्वाजे बन्द हो जायेंगे। हिन्दी भाषा के गुणों में एक विशेष गुण यह है कि हिन्दुओं की भाषा होती हुई भी उसने अरबी-फारसी ही के नहीं बल्कि तुर्की, पुर्तगाली और अंग्रेज़ी इत्यादि के शब्दों को भी अछूत नहीं समझा। यदि ऐसा नहीं किया होता तो कितने ही शब्द जो हमारे घरों में पहुँच गये हैं, आज न होते और उनके पर्यायवाची शब्द हमारे पास शायद इतने सुगम न मिलते। इस प्रकार के शब्द प्रायः मनुष्य-जीवन के सभी कामों से सम्बन्ध रखते हैं और उनके बिना जीवन निर्वाह कठिन हो जाता। यथा:—

सौगात, गलीचा, बहादुर, मुचलका, कुली, कैंची, चाकू, लाश, दरोगा, तोप, चिक आदि तुर्की से।

अल्मारी, अचार, बोतल, कमरा, आलपीन, गमला, गोभी, गोदाम, चाबी, मिश्री, मेज, तम्बाकू नीलाम, तौलिया, परात, बुताम, सन्तरा आदि पुर्तगाली से।

समन, जज, सिगरेट, [illegible]बर, रजिस्टर, लालटैन मशीन, मजिस्ट्रेट, बैंक, बम, रिपोर्ट, फीस, परेड, टिकट, ड्राइवर, टीम, टेबिल, मैनेजर, मास्टर,

मिल, मेम्बर, मेम, मोटर, मिनट, बिल्टी, बिगुल, प्लेग, पुलिस, बटन, मनीबेग, रजिस्ट्री, मनी-आर्डर, स्टेशन, प्लेटफार्म, ट्रेन, मानीटर, कांग्रेस, कालिज, कम्पनी, कलेण्डर, कमिटी, कापी, वार्निस कुनैन, कोट, कौन्सिल, ग्लास, गिन्नी, गैस आदि अंग्रेज़ी से।

हद, बालिग, हलवाई, अबीर, अतलस, तोशक, तकिया, हुक्का, असबाब, बुखार, बहस, बलवा, गल्ला, जेब, दलाल, तरावट आदि अरबी से।

पुर्जा, गुलाल, अखबार, नौकर, पुल, दंगल, सितार, जलेबी, रन्दा, दवात, दिहात, बेबाक, पलक, चश्मा, वकील, लाली, बीमा, बाबा, पाजी, दामाद, तालाब, बखिया, तमाचा, आदि फारसी से।

हिन्दी के प्राचीन प्रसिद्ध कवियों की कविता में भी बहुतेरे शब्द ऐसे मिलते हैं जो विदेशी भाषा के हैं या विदेशी शब्दों के रूपान्तर मात्र है। यथा:—

जायसी—शेरशाह दिल्ली 'सुलतानू'।

सूरदास—हों हरि सब पतितन को नायक।

को करि सकें बराबरि मेरो इते मान को 'लायक'।

तुलसीदास—गई बहोरि 'गरीब नेवाजू'।

सरल सबक 'साहिब' रघुराजू।

भइ 'बकसीस' जाचकन दीन्हा।

बना 'बजार' न जाय बखाना।

जनवासे गवने मुदित सकल भूप 'सिरताज'।

कुम्भकरन कपि 'फौज' बिड़ारी।

लाकर जाके 'बन्दीखाना'।

जो कछु झूठ 'मसखरी' जाना।

बैठे बजाज, सराफ, बनिक, अनेक मनहुँ कुबेर से।

'गनी गरीब' ग्रामनर नागर।

कोटि 'कंगूरन' चढ़ गए कोटि कोटि रनधीर।

बोधा—होय 'मगरूर' तापै दूनी 'मगरूरी' कीजै लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये।

पदमाकर—एते गज 'बकसे' महीप रघुनाथ राव याही गज धोखे कहूँ काहू देय डारेना।

भूषण—रूम रूँद डारै खुरासान खूंदि मारे 'खाक' खादर लौ झारै ऐसी साहू की बहार है।

राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते 'पातसाहन' की छाती दरकति है।

मतिराम—सूबनि को मेटि दिली दल दलिबे को चमू सुभट समूहन सिवा की उमहति है। कहै मतिराम ताहि रोकिबे को संगर में काहू के न 'हिम्मति' हिए में उलहति है। छत्रसाल नन्द के प्रताप की लपट सब, गरबी, 'गनीम, बरगोन,' को बहति है। पति 'पातसाह' की 'इजति उमरावन' की राखी 'रैया' राव भावसिंह की रहति है।

बिहारी—लिखन बैठ जाकि 'सबिहि' गहि गहि गरब 'गरूर'।

भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

बचेन बड़ी 'सबील' हूँ चील घोंसुओं मांस।

तुलसीदास तथा हिन्दी के अन्य प्राचीन कवियों की रचना में अरबी फारसी के शब्दों का ही नहीं, उर्दू में आजकल प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है। जैसे:—

"बालिस बासी अवध का बूझिये न खाको।"

मुस्लिम तबलीग़ का कुत्सित ढंग

एक हिन्दू नवयुवक की आप बीती कहानी

मैं नरेन्द्र कुमार पिता का नाम नारायण क़ौम सुनार स्थान जलगांव (पूर्वी खानदेश) का रहनेवाला हूँ। एक मनुष्य खद्दर पोश जलगांव की धर्मशाला में ठहरा हुआ था। इसके साथ एक नौकर भी था। मेरा और उस शख्स का धर्मशाला में परिचय हो गया। उसने मुझ से पूछा, "क्या पढ़े हो?" मैंने कहा "मैं मैट्रिक पास हूँ।" उसने मुझे नौकरी दिलाने के लिए कहा और लखनऊ साथ चलने को कहा। उसने कहा कि हमारी एक बूरे की मिल (Sugar Mill) है, उसमें तुम्हें नौकर करा देंगे। उसने मेरे पिता से मुझे अपने साथ ले जाने के लिये कहा परन्तु उन्होंने मना कर दिया। मेरे समझाने से कि इधर बेकारी अधिक है, कोई काम नहीं लगता, इससे मुझे आज्ञा दे दो। इस पर मुझे इस शख्स के साथ जाने की आज्ञा दे दी। इस शख्स ने मुझे ५) रु० दिये। मैंने यह रुपये घर वालों को दे दिये। यह शख्स जनेऊ पहने हुए था और अपने को ब्राह्मण बताता था। यह शख्स मुझे अपने साथ लेकर ता० १३ अप्रैल सन् १९३६ को ट्रेनमें रवाना हुआ। उसने मुझे खँडुआ स्टेशन पर उतारा। दूसरे दिन फिर हम लोग ट्रेन में बैठ गये। फिर उसने मुझे इटारसी स्टेशन पर उतारा। इटारसी से दो लड़के यह शख्स अपने साथ और लाया। इटारसी से हम लोग Grand Trunk Express (ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस) द्वारा भोपाल तक आये। यह शख्स नौकर को मेरे पास छोड़ कर कई कई घण्टों के लिए चला जाया करता था। भोपाल से सवार होकर झांसी उतरे। झांसी से कानपुर आये। हम तीनों लड़कों को गाड़ी में नौकर के साथ रहने दिया और वह स्वयं प्लेट-फार्म के बाहर चला गया। बाहर से वह तीन और शख्सों को अपने साथ लाया तथा दो टिफिन केरियरों में खाना लाया। अब हम सब आठ शख्स हो गये थे। इन लोगों ने हमसे खाना खाने के लिए कहा। खाने में मुझे मांस मालूम हुआ। मैंने खाना खाने से इन्कार किया। उस शख्स ने मुझे खाना खाने के लिए आग्रह किया। मैंने पूछा

अर्थात् अयोध्या के निवासी खाक भी नहीं समझते।

"कैयो बार कही पिय अजहूँ न आए बाज।"

अर्थात् हे स्वामी, मैंने कई बार कहा, तुम अभी तक बाज नहीं आए।

इसमें—

खाक नहीं समझना और बाज नहीं आना, ये मुहावरे उर्दू में आजकल प्रचलित हैं, जो शब्द पहले तुलसीदास की बोलचाल में थे।

(क्रमशः)

कि आप ब्राह्मण होते हुए मांस क्यों खाते हैं ? उसने कहा कि हमारी तरफ़ ब्राह्मण मांस खाते हैं। मांस खाने से ताक़त आती है। मैंने भोजन नहीं किया।

नौकर के मुँह से एक साथ यह शब्द निकले कि "मियां अब तो खाना ही पड़ेगा।" इस पर मुझे विश्वास हो गया कि यह लोग मुसलमान हैं। नौकर तथा उन दो लड़कों में से एक ने कहा कि मांस खाने में बड़ा मज़ा आता है। और यदि अब नहीं खाओगे तो मुसलमान बनने के बाद तो खाना ही पड़ेगा और तुम्हारी शादी भी करा दी जावेगी।

मैंने तथा दूसरे लड़के ने कहा कि हमको धोका देकर तुम लोग क्यों लाये। यह दूसरा लड़का रोने लगा। इस पर इन मुसलमानों ने हमें समझाया कि हम तुम्हें मुसलमान नहीं बनायेंगे। हमने तुमसे वैसे ही पूछा है। इन लोगों ने कहा कि लखनऊ स्टेशन पर कोई ऐसी गड़बड़ की बात न करना। इन लोगों ने हम दोनों लड़कों को चाकू का भय दिखाया।

हम लोग ता० १७ अप्रैल ३६ को लखनऊ पहुँच गये और हम सब लोग ट्रेन से उतरे। इन मुसलमानों ने हम दोनों लड़कों का हाथ पकड़ लिया। मैंने झटका देकर हाथ छुड़ा लिया और शोर मचाया। वे लोग नीचे के रास्तेसे चले गये। मुझे एक गुजराती सज्जन प्लेट फार्म पर मिल गये। मैंने उनसे सारा हाल कहा। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इन लोगों के पीछे मत पड़ो वरना यह तुम्हें और बहकायेंगे। तुम सीधे आर्य्य-समाज में चले जाओ।

मुझे रास्ते में म० कन्हैयालाल एक नवयुवक मौहल्ला आर्य्यनगर लखनऊ के रहने वाले मिल गये। उन्होंने मुझे गणेशगंज आर्य्यसमाज में श्री पं० रासविहारी तिवारी के पास पहुँचा दिया जहां पर मैंने अपना उपरोक्त बयान दिया।

—

आर्य्य नवयुवकों की कठिनाइयां

(एक आर्य नवयुवक ने अभी हाल में अपने विवाह के सम्बन्धमें श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज से पत्र व्यवहार द्वारा परामर्श लिया है। इस पत्र व्यवहार से आर्य्य नवयुवकों की सामाजिक कठिनाइयों और उनके निराकरण पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है इसलिए हम उसे अपने पाठकों के सम्मुख रखते हैं—सं०)

स्वामी जी, मैं जबसे आर्यसमाजी बना तबसे मेरा यह कर्तव्य होगया है कि अपने विद्वानों और आर्य-समाजियों के विचार सुनूं, पढ़ूं और मनन करूं। मैं आपकी पुस्तकें और लेख यथा-समय पढ़ता रहता हूँ और हर प्रकार के आपके शुभ विचार पढ़कर शान्ति अनुभव कर लेता हूँ।

जब से मैं आर्य-समाजी बना तब से मुझे अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ा है परन्तु एक आर्य के नाते मैंने उन सब बाधाओं का सामना कर अपना कर्तव्य पालन किया है। परन्तु इस वक्त मेरे ऊपर एक बड़ी भारी मुसीबत आ पड़ी है और जब तक आप जैसे संन्यासी उस मुसीबत से बचने का उपाय न बतावेंगे तब तक यह मुसीबत दूर नहीं हो सकती। यही कारण है मैंने आपको यह पत्र लिख कर तकलीफ दी। अन्यथा आर्य-कुमार छोटी-मोटी बाधाओं का सामना तो खुद ही कर लेते हैं।

मेरी उम्र इस समय २३ साल की है। और मुझे आर्य-समाज में प्रवेश किये करीब ५ साल हो गये हैं। मैंने आर्य समाज के अच्छे २ ग्रन्थ पढ़े हैं। और सब ग्रन्थों के पढ़ने के बाद मेरी रुचि सामाजिक सुधारों की तरफ बढ़ी। मेरी तुच्छ बुद्धिने यह अनुभव किया कि जबतक सामाजिक कुरीतियों का नाश न होगा तब तक भारतवर्ष में फिरसे पुरातन वैदिक सभ्यता का विकास होना दुर्लभ है। इस हेतु को हृदय में रखते हुए मैंने यह विचार किया कि सामाजिक सुधारों में मुझे भी अग्रसर होना चाहिये। मैं यह जानता था कि अगर मैंने सामाजिक सुधार का नाम भी लिया तो मुझे मेरी बिरादरी बहुत तकलीफ देगी परन्तु इसकी मैंने कोई परवाह न की और मैं यहां पर यह लिख देना अनुचित नहीं समझता कि जब अजमेर अर्द्ध-शताब्दी में व्रत लेने का समय था तो उस समय भी मैंने यही व्रत प्रभु के सामने लिया था कि प्रभो! मैं सामाजिक सुधार करने में सफल होऊँ।

मैं अविवाहित हूँ। मेरे बड़े भाई साहब और माता पिता जो कट्टर पौराणिक हैं, मुझ पर दबाव डाल रहे हैं कि पौराणिक रीति से प्रचलित जाति के अन्दर ही विवाह करूं। परन्तु मेरा विचार जैसा कि आर्य समाजी का होना चाहिए, इससे उल्टा है। मैं चाहता हूँ मेरा विवाह पूर्ण वैदिक रीति से हो और प्रचलित जात-पात तोड़ कर के हो। मेरे माता, पिता, भाई इत्यादि इस बात के सख्त खिलाफ़ हैं। मुझे इसी में शान्ति और सुख है कि मैं अपना २५ वर्ष की अवस्था में पूर्ण वैदिक रीति से और प्रचलित जात-पांत तोड़कर गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था के अनुसार अपना विवाह करूं। अब महात्मा जी आप ही बतायें मैं क्या करूं? मेरे माता पिता रोते हैं, चिल्लाते हैं, लड़ते हैं और धमकाते हैं।

परन्तु दूसरी तरफ मेरी-आर्य-समाज के सिद्धान्त का खण्डन होता है। और आर्यसमाज के सिद्धान्त के खण्डन का मतलब मेरी आत्मा की आवाज़ के खिलाफ़ काम करना। मैं चाहता हूँ कि चाहे कुछ भी हो, आर्य-समाज के नियमों के अनुसार ही मुझे विवाह संस्कार करना चाहिये। मेरा यह विचार है कि कोई ऐसा उपाय आप बतावें ताकि मेरे माता पिता भी खुश हों और आर्य समाज के सिद्धान्तका भी बिल्कुल खण्डन न हो। आप आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वान और लीडर हैं। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य होगी। आप जैसा कहेंगे वैसा ही मैं करूँगा। आप मेरे पिता जी को भी पत्र लिखकर उनको समझावें और मुझे यह भी लिखकर कृतार्थ करें कि अगर मेरे माता पिता अपनी बात पर ही अड़े रहे तो मुझे क्या करना चाहिए। ताकि मैं अपना भविष्य का प्रोग्राम निश्चित करूं। मेरे दिल में आर्य-समाज का प्रचार करने की ज्वाला धधक रही है। अगर मैं पौराणिक रीति रस्मों में फँस गया तो फिर कुछ भी न कर सकूंगा। आप अवश्यमेव मुझे उत्तर देंगे और इस पत्र के मिलते ही उत्तर देने की कृपा करेंगे। साथ में एक पत्र मेरे पिता जी के नाम भी लिखें। मैं उनको भेज दूंगा। मैं यहां पर यह लिख देना चाहता हूँ कि मैं आर्य-समाज के सिद्धान्त के लिये सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हूँ। आपकी आज्ञा का इन्तज़ार करता हूँ।

मैं खाली English Matric तक ही पढ़ा हुआ हूँ परन्तु आप लोगों की दया से ६० रु० मासिक तक कमाता हूँ और माता पिता की इस प्रकार कुछ न कुछ सेवा करता हूँ। परन्तु इतना होने पर भी माता पिता मेरे सामाजिक विचार आर्य-सामाजिक होने के कारण मुझे पागल समझते हैं और बाल-विवाह करने के लिये दबाव डालते हैं।

मैं आपसे आखिर में हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ कि आप मेरे विचारों पर विचार करें और आप इसका उत्तर अवश्यमेव शीघ्र दें। आप के पत्र का इन्तज़ार करता हूँ। कृपया अगर मैंने कोई भूलकी हो अथवा खराब शब्द लिखा हो आप माफ करें। आप विद्वान संन्यासी हैं।

उत्तर

श्रीमन्नमस्ते !

मैंने आपका पत्र ध्यान पूर्वक पढ़ा। मेरी सम्मति यह है कि आपको अपने इन निश्चयों में दृढ़ रहना चाहिए अर्थात् २५ वें वर्ष में विवाह करना चाहिए और वह भी वर्णव्यवस्थानुकूल केवल गुण और कर्म के विचार के साथ, जन्म की जाति का विचार किए बिना, करना चाहिये। इसमें जो कुछ भी विरोध सहना पड़े उन्हें वीर आर्य कुमारों की भांति सह लेना चाहिए। माता, पिता और गुरु की आज्ञा सदैव पालन करनी चाहिए परन्तु इनमें से कोई भी यदि अधर्म की बात कहे तो उसे कदापि नहीं मानना चाहिए। माता पिता का विवाह का, समय से पहले अनुरोध, अधर्म है और पालनीय नहीं है। यह धर्मशास्त्र की मर्यादा है। परन्तु माता पिता की अधर्म की बात न मान कर भी उनकी सेवा शुश्रूषा कभी नहीं छोड़नी चाहिये। सेवा करने से वे एक दिन स्वयं अपनी ग़लती को अनुभव करके तुमसे प्रसन्न हो जायेंगे। इसी पत्र को तुम अपने पिता जी को दिखला सकते हो। —नारायण स्वामी

विविध पत्र-पत्रिकाएं

विवाह संस्कार

श्री० म० राजेन्द्र जी 'विवाह संस्कार' शीर्षक में 'आर्य मित्र' में लिखते हैं:—

कई बार विचार हुआ कि आर्य-समाजियों में विवाह-संस्कारके साथ होने वाली पौराणिक अथवा रूढ़ियों के सम्बन्ध में 'आर्यमित्र' में कुछ लिखा जाय परन्तु यह विचार कर चुप हो रहा कि इस प्रकार केवल लेख लिखने से इन कुरीतियों का अंत नहीं हो सकता जबतक कि हम स्वयं इन्हें क्रियात्मक रूप में परिणत करने के लिये कटि-बद्ध न हो जायें। किन्तु २६ मार्च ३६ के आर्यमित्र में श्री डा० मिट्ठन लाल जी का इस सम्बन्ध में लेख पढ़कर यह भावना पुनः जाग्रत हो उठी। आर्यमित्र में प्रायः यह प्रकाशित होता रहता है कि अमुक स्थान में अमुक विवाह वैदिक रीति से हुआ। किन्तु यदि देखा जाय तो इनमें से निनानवे प्रतिशत यह वैदिक विवाह केवल संस्कार विधि हाथ में लेकर ही कराये जाते हैं शेष सब वही पुरानी लकीर पीटी जाती हैं। ऐसी सूचनाएँ प्रायः सहालगों में जब पौराणिक विवाह होते हैं अधिक प्रकाशित होती हैं। मुझे बड़ा दुःख हुआ जब मैंने आर्यसमाज के एक प्रमुख विद्वान को हाल ही में अपने पुत्र का विवाह इन्हीं सहालगों में करते देखा। अब भी यह "वैदिक विवाह" रात्रि को दो तीन बजे और वह भी आर्य प्रतिनिधि सभाओं के महोपदेशकों द्वारा सम्पादित होते देखे जाते हैं। इन निर्बलताओं को हम लोग प्रायः दो बातों में टाल दिया करते हैं कि 'दूसरे पक्ष के लोग आर्य-समाजी नहीं थे' या 'परिवार की अशिक्षित स्त्रियाँ नहीं मानी' कोई कोई तो यहां तक बढ़ जाते हैं कि इन रूढ़ियों की सार्थकता तक सिद्ध करने पर उतर आते हैं। डाक्टर साहब ने भी दबे शब्दों में संस्कार-विधि में कुछ संशोधन की ही इच्छा प्रकट की है। किन्तु आवश्यकता इस बात का है कि संस्कार-विधि का संशोधन न कराके हम अपनी निर्बलताओं और स्वार्थ परताओं का संशोधन करें।

विवाह सस्कार के अतिरिक्त इस अवसर पर होने वाली शेष सब प्रथाओंमें या तो पौराणिक रूढ़िवादकी गंध आती है या उनमें किसी न किसी रूप में धन-लोलुपता निहित है। टीका, सगाई, लग्न, दरवाजा खेत आदि सब रस्में ठहरावनी और वह भी पाणि-ग्रहण से पूर्व निश्चित धनराशि हथियाने का रूपान्तर है जिस से कहीं विवाह संस्कार के पश्चात् कन्या पक्ष वाले ठहरावनी का रुपया न देकर धता न बतावें। आरम्भ में कन्या पक्ष से दहेज में धन ठहराने की रीति पड़ी होगी और आगे चलकर जब किसी ने वर पक्ष वालों को धोका दिया होगा तो उस धन राशि को भेंट, टीका लग्न, खेत अथवा दर्वाजे पर ही संस्कार से पूर्व

ही वसूल कर लेने की प्रथा चल पड़ी होगी। मेरी समझ में इनमें लैन दैन, भाव ताव और पारस्परिक अविश्वाश के अतिरिक्त और कोई सार नहीं। हम आर्य समाजी भी विवाह में धनलोलुपता से ही काम लेते हैं तभी हमें संस्कार विधि में संशोधन की आवश्यकता अनुभव होती है। किन्तु जो समाज अंतर्जातीय विवाह की बात सोच रहा हो और यदि वह इन साधारण सी कुप्रथाओं का भी अंत न कर सके, वह कहां तक कृतकार्य होगा इसे पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं। तेल, माँगर, निकरौसी अथवा घुड़चढ़ी, देवताओं का पूजा, सहेरा, मोहर, जामा, पायजामा आदि तो ऐसी बातें हैं जिन्हें आर्यों को आज से वर्षों पूर्व ही समूल नष्ट कर देना था। जामा, पायजामा निश्चित ही मुसलमानो राजाओं का पहनावा है। उसके स्थानपर धोती कुर्ता, टोपी, साफा आदि देशी वेशभूषा अपनाने में बाल की खाल निकालने वाले आर्यसमाजियों के लिये किसी आर्य विद्वान की व्यवस्था की आवश्यकता नहीं। किन्तु हम आर्यसमाजियों का इन छोटी-छोटी रूढ़ियों में आज भो फंसा रहना यह सिद्ध करता है कि हम भी अपने पौराणिक बन्धुओं से कम रूढ़ियों के गुलाम नहीं हैं। यह देखने में साधारण सी बातें प्रतीत होती हैं किन्तु वास्तव में इन्हीं बातों का परिणाम है कि आज लोग आर्यसमाज की ओर आकृष्ट नहीं होते। लोग समझने लगे हैं कि इसके 'खानेके दांत और तथा दिखाने के और हैं' यदि यह प्रथाएँ हमारे वैदिक संस्कार का अंग होतीं तो ऋषि दयानन्द ने उनका समावेश संस्कार विधि में पूर्व से कर दिया होता। आर्य लोग जिन कठनाइयों का इन अवसरों पर अनुभव करते हैं वास्तव में वह स्वयं उन की ही उपस्थित की हुई होती हैं। क्या आर्य परिवारों में लड़के लड़कियों का अभाव है जो हम यह कहते हैं कि दूसरे पक्ष वाला अमुक विचारों वाला है? किन्तु आज हम जहां एक ओर धन लोलुपता के कारण अपनी पुत्रियों को अन्य मतावलम्बियों के यहाँ देकर आर्य संस्कृत में पली हुई इन कन्याओं को पददलित करा रहे हैं वहां दूसरी ओर पौराणिक परिवारों की कन्याओं को ग्रहण करके अपनी भावी संतति को अवैदिक वातावरण में पालित पोषित करने की नींव डाल रहे हैं। आज हम रोते हैं कि आर्यों की सन्तान आर्य नहीं बनती। किन्तु मैं पूछता हूँ कि पुत्र पुत्रियों का विवाह करते समय क्या आप भी यह विचार करते हैं कि जिस परिवार में हम विवाह सम्बन्ध करने वाले हैं वह आर्य हैं वा नहीं? अथवा वर वा बधू सुशिक्षित तथा आर्यसंस्कृति में पालित पोषित हैं वा नहीं? हम तो केवल मालदारी, शान शौकत और पीछे दूसरों को दोष देकर, अपनी निर्बलताओं को छिपाना चाहते हैं।

आज यदि आर्य समाजियों ने ऋषि की बताई हुई विवाह पद्धिति के अनुसार अपने यहां विवाह करने आरम्भ कर दिये होते तो कम से कम शिक्षित हिन्दू समाज उनके पीछे होता। किन्तु हम तो आज ५० वर्ष व्यतीत होने पर भी विवाह-पद्धति में संशोधन की ही बात सोच रहे हैं। विवाह संस्कार ही क्या हम यदि चाहें तो अपने परिवार

में सम्पूर्ण अवैदिक रीति रिवाजों को बन्द करा सकते हैं। आज भी यदि हम दृढ़ता दिखायें तो परिवार की स्त्रियाँ बिना ननुनच किये उनका परित्याग कर सकती हैं। किन्तु हम स्वयं 'ढिल मिल यक़ीन' हैं और व्यर्थ दूसरों को दोष देते हैं। दूसरे लोग, चाहे यह हमारी गृह पत्नी, पुत्र अथवा पुत्री ही क्यों न हों, हमारी दृढ़ता और सिद्धान्तों पर मर मिटने वाली लग्न को देखते हैं और उससे प्रभावित होसकते हैं। कोरी बातोंसे न कभी किन्हीं सिद्धान्तों का, चाहे वह कितने ही अच्छे क्यों न हों, प्रचार हुआ और न हो सकता है।

मध्य प्रदेश की हिन्दू स्त्रियों की दुर्दशा

'आर्य सेवक' सम्पादकीय स्तम्भों में 'प्रान्तीय हिन्दू स्त्रियों की दुर्दशा' पर प्रकाश डालते हुए लिखता है—

हिन्दू-स्त्रियों का इस प्रान्तमें बड़ी तेजीसे ह्रास हो रहा है। हिन्दू स्त्रियों विशेषकर श्रम जीवी स्त्रियां यहाँ से अन्य प्रान्तों में पहुंचाई जाती हैं। विशेषकर पंजाब, सी० पी० स्त्रियों का खरीददार है। पंजाब में प्रति १६ मज़दूरों में १५ पुरुष हैं और १ स्त्री है। देहली में प्रति ९ मज़दूरों में ८ पुरुष और एक स्त्री है। इस प्रान्त में प्रति ३ मज़दूरों में २ पुरुष और एक स्त्री है। इस प्रकार हमारे प्रान्त में मज़दूरों का तिहाई हिस्सा स्त्रियों का है जो सब से अधिक गुण्डों के और विधर्मियों के चंगुल में फंसती रही हैं। छिंदवाडा की पडोसी कोयले की खानों में काम करने वाले मज़दूरों के महाजन रोहिले और पठान हैं। ये रोहिले और पठान प्रान्तमें श्रम जीवियों से बड़ा कड़ा सूद वसूल कर अपना जीवन चलाते हैं। मज़दूर-स्त्रियां इन की दया पर निर्भर रहती हैं। मैंने परासिया स्टेशन पर एक गोरे रोहिले और उनकी काली स्त्री को छोटे २ काले बच्चों के साथ देखा। आमला स्टेशन पर एक मुस्लिम टिकिट कलेक्टर मित्र से मालूम हुवा कि उधर भील जाति तथा अन्य छोटी जातियों की स्त्रियां बड़ी आसानी से प्राप्त हो सकती हैं, खरीदी जा सकती हैं। उसने बतलाया कि आप ५ आने में १ स्त्री खरीद सकते हैं। छिंदवाड़ा और सिवनी में बात चीत से पता चला कि उधर की ग्रामीण स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं और यह भी एक कारण होता है कि वे गुण्डों द्वारा जाल में फंसा ली जाती हैं। इससे कम दर्द नाक दशा छत्तीस गढ़ी स्त्रियों की नहीं है। वहां की भोली देहाती स्त्रियाँ बड़ा सस्ता शिकार हैं। उनके लिये गुण्डे तो हैं ही किन्तु ईसाई मिशनरियों का भी जाल फैला हुआ है। एक बार एक सभ्य सज्जन, बिलासपुर, अपने एक प्रतिष्ठित भाई के घर गये। वहाँ से एक छत्तीसगढ़ी सुन्दरी को पति से पृथक कर साथ लाये जैसे वह स्त्री छत्तीसगढ़ी की कोई सौगात हो। उस स्त्रीको गर्भ रहा। अपने हिन्दूपन में बट्टा लगजाने से, अपने को बचाने के लिये क्या किया पता नहीं। किन्तु उस युवती का अब पता नहीं है। इस प्रकार स्त्री-पलायन का हाल समस्त प्रान्त में ज़ोर से चल रहा है। एक बार सर गंगाराम ट्रस्ट के कार्यकर्ता ने मुझ से कहा कि "इस नगर बुरहानपुर से हिन्दू स्त्रियां पंजाब में बेची जाती हैं ऐसा उन को पता चलता है। यदि पता चल जाय तो ट्रस्ट उस स्त्री बेचने वाले गिरोह के विरुद्ध अपने व्यय से मुकद्दमा चलाने

को तैयार है।" प्रान्त में कुछ स्थानों पर अड्डे हैं जहाँ इधर उधर से स्त्रियां बटोरी जाती हैं और एकत्रित कर अन्य प्रान्त में लेजा कर बेची जाती हैं।

यह तो हुई ग्रामीण और श्रमजीवी स्त्रियों की दशा। उच्चवर्णीय हिन्दू अबलाओं को भी दर्दभरी दास्तान है। वे बचपन में वैधव्य प्राप्त कर लेती हैं। प्रान्त की विधवाओं की संख्या प्रति एक हजार की आबादी के पीछे १ दिन से लेकर ५ वर्ष तक की आयु की १; ५ से १० तक की ६; १० से १२ तक की १०; १५ से २० तक की २४; २० से ३० तक की ५६ हैं। ये संख्याएँ वैधव्यकी कितनी भीषणता प्रगट करती हैं। विधवा-पलायन, गर्भ-पात, भ्रूण-हत्या, विधवा को विष-पान, उनको जाति से पृथक् करना आदि कांड 'वैधव्य' के अनिवार्य परिणाम हैं। प्रान्त के हिन्दूओं की आँखें अभी इस ओर बन्द ही हैं। कितनी ही घटनाएँ घट जाती हैं किन्तु जनता का ध्यान उधर नहीं जाता। अभी कुछ दिन पूर्व एक नगर में एक विधवा की विष द्वारा मृत्यु हुई। डाक्टरी जांच में विष के साथ में एक बच्ची भी पेटसे निकली। अफवाह थी कि उस विधवाको विष दे दिया गया था, किन्तु 'दोषी' को सामने लाने की कौन हिम्मत कर सकता है? बल्कि उसका यह नृशंस कार्य धर्म के अनुकूल और पवित्र समझा गया होगा। प्रान्त के प्रत्येक नगर से कितनी ही विधवाएँ इस प्रकार जीवन से हाथ धोती होंगी। एक नगर में आर्यसमाज को प्राप्त भूमि में बने हुए कूए को साफ़ किया गया तो उस में से छोटे बच्चों की अस्थिपंजर भी निकले थे। स्त्रियों का भाग जाना या भगा ले जाना भी बड़ा जोरदार है। इन घटनाओं को भी पर्दे की आड़ में रखा जाता है। प्रतिष्ठा, कुलअभिमान और लोकोपवाद का भय ही इन बातों को छिपाये रखता है किन्तु क्या प्रतिष्ठा और कुल-अभिमान महिलाओं की लुटी हुई लज्जा को छिपाने में सुरक्षित है? प्रतिष्ठा और अभिमान पर तो उसी क्षण कलंक लग चुका जिस समय अनहोनी घटना घट चुकी। अभी की एक ताजी घटना है। अर्वी के एक उच्च-वर्णीय व्यक्ति की नव युवती कन्या और पत्नी एक मुसलमान के घर चली गईं। बात किसी प्रकार प्रगट होगई। स्थानिक आर्य समाजियों ने उसे निकालने का प्रयत्न किया। कन्या को प्राप्त करने में वे सफल हुये। कन्या का वापिस न आने के लिये किया गया दुस्साहस देखने योग्य था। हिन्दुओंके अभिमान और मर्यादाको कुचलनेवाला था। वह युवती आध सेर गोश्त का लोथड़ा अपनी हथेली पर रखे आम बाजार से निकल कर कोतवाली गई। वहाँ उसने सैकड़ों की उपस्थिति में उस गोश्त के टुकड़े को अपनी जीभ से लगाये हुए कहा कि यह गाय का गोश्त है और मैं इसे खा चुकी।

इस प्रकार प्रान्त की स्त्रियों की दिल को दहलाने वाली अनेक दारुण कहानियाँ हैं। उनकी रक्षा यदि किसी ने की है और कोई कर रहा है तो वह है आर्य समाज किन्तु उसका काम भी बहुत कम हुआ है। अन्य संस्थाएँ यत्र तत्र उठती हैं और विलीन हो जाती हैं। वर्षा के मौसमी पौधों के समान उनका जीवन रहा है। आवश्यकता है

कि प्रान्त के प्रतिष्ठित सज्जन इस ओर ध्यान दें और संगठन रूप से स्थान २ पर कार्य शुरू करें। आशा है स्त्रियों के प्रश्न पर प्रान्त के लोग गंभीरता से विचार करेंगे।

आर्य्य समाज कहाँ है ?

श्री० म० कृष्ण जी 'प्रकाश' में आर्य्यसमाज कहाँ है ? शीर्षक एक लेख-माला लिख रहे हैं। उस लेख-माला में उन्होंने आर्य्यसमाजियों के कौन्सिलों इत्यादि में प्रवेश का औचित्य सिद्ध करने का यत्न किया है तथा प्रवेश की प्रेरणा की है। वे लिखते हैं:—

"१ अप्रैल सन् १९३७ से नया शासन-विधान लागू होगा। इससे पूर्व प्रत्येक प्रान्त में नई लेजिस्लेटिव असेम्बली बन जायगी। न केवल भिन्न २ सोसाइटियाँ लंगर लँगोटे कस कर अखाड़े में उतर रही हैं वरन् भिन्न भिन्न व्यक्ति भी अपने निजू परिचय के बल पर चुनाव के लिए तैयार हो रहे हैं। मैं आर्य्य समाजी भाइयों से कहना चाहता हूं कि वे इस अवसर को हाथ से न जानें दें और अपने अपने हलकों से खड़े होकर लेजिस्लेटिव असेम्बली में जाने की कोशिश करें। इससे वे अपने प्रान्त की भी सेवा कर सकेंगे। और अपने देश की भी और यदि कभी आर्य्य समाज को उनकी सेवा की ज़रूरत हुई तो वह भी मिल सकेगी।"

दलितोद्धार और आर्य्य समाज

श्री० पं० भीमसेन जी विद्यालङ्कार 'आर्य्य मुसाफ़िर' में आर्य्य समाज के दलितोद्धार कार्य्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं:—

'डाक्टर अम्बेदकर की धमकी तथा मुस्लिम सिक्ख और ईसाई प्रचारकों इत्यादि के आर्थिक तथा राजनैतिक प्रलोभनों द्वारा दलितों को अपनी ओर खींचने की समस्याने दलितोद्धार अधिक पेचीदा बना दिया है। आर्य्यसमाज इस समय तक दलित भाइयों को धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक समानता, स्वतन्त्रता दिलाने का प्रयत्न करता रहा है। आर्य्य समाज ने आर्थिक तथा राजनैतिक प्रलोभनों से दलितों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न नहीं किया और न ही इस कार्य के लिए इन प्रलोभनों का उपयोग करना उचित समझा है परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि इन परिवर्तित परिस्थितियों के कारण आर्य्य समाज को अपने दलितोद्धार आन्दोलन की रीति-नीति तथा कार्य्य पद्धति पर विचार करना पड़ा है कि आर्य्य समाज को इस आन्दोलन का संचालन किस प्रकार से करना चाहिए।

(१) जिन दलित भाइयों का उद्धार किया जाय उन्हें पृथक् श्रेणी में सम्मिलित न किया जाय। उन्हें आर्य्य शब्द से ही सम्बोधित किया जाय। उन्हें 'महाशय' 'हरिजन' विशिष्ट आर्य्य' 'मेघ' आदि शब्दों से सम्बोधित न किया जाय। उन्हें आर्य्य समाज में 'आर्य्य' शब्द से ही प्रविष्ट किया जाय।

(२) स्थानीय आर्य्य समाजों को महीने में एक बार सहभोज या प्रीति भोज समाज-मन्दिर में करना चाहिए जिसमें बिना किसी भेद भाव के सब आर्य्य भाई सहयोग दें।

(३) यथायोग्य गुणानुसार इन व्यक्तियों से विवाह संस्कार करने चाहिए।

(४) जहां कहीं इन वर्गों की अधिक संख्या है वहां विशेष रूप से प्रचार किया जाय और इनके सामने समाज तथा वैदिक धर्म का महत्व दर्शाते हुए इन्हें आर्थिक तथा राजनैतिक प्रलोभनों से प्रेरित होकर धर्मान्तर में प्रवृत्त होने से रोका जाय और उन्हें बतला या जाय कि ये लोग केवल मात्र अपने साम्प्रदायिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्वार्थ के लिए यह चाल चल रहे हैं और स्वयं इनके भीतर अछूतपन है।

(५) मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन के सम्बन्ध में आर्य्य समाज को अपने पौराणिक मत-भेद रखते हुए भी धर्म मन्दिरों को मनुष्य मात्र के लिए खोलने का प्रयत्न करना चाहिए। इस समय वास्तविक स्थिति यह है कि भारत में जितने भी सम्प्रदाय हैं उन सबके धर्म्म-मन्दिर किसी न किसी जाति के लिए विशेष शर्तों के कारण बन्द हैं केवल-मात्र आर्य्य समाज का धर्म्म-मन्दिर ही ऐसा है जहाँ बिना किसी भेद-भाव के प्रवेश कर सकते हैं। यदि आर्य्य समाजी इस दृष्टि से दलितोद्धार आन्दोलन का संचालन करेंगे तो वे यथार्थ में दलित भाइयों का उद्धार कर सकेंगे।

आर्य्य संस्थाओं की दशा

श्री० बा० शिवनारायण जी शुक्ल एडवोकेट लखीमपुर 'आर्य्य संस्थाओं की दशा' शीर्षक में आर्य-शिक्षण संस्थाओं, कन्या पाठशालाओं और डी० ए० वी० हाई स्कूलों के हवाले से सरकारी ग्राण्ट के अभिशाप के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

(१) हम पाठ्य क्रम में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते हैं जो पुस्तकें शिक्षा विभाग से स्वीकृत हैं वही पढ़ानी पड़ती हैं।

(२) किसी मुसलमान ईसाई इत्यादि को हम प्रविष्ट करने से नहीं रोक सकते हैं।

(३) सरकारी परीक्षाओं के लिए ही पुस्तकों का बोझ कुछ कम नहीं है फिर हम धार्मिक शिक्षा का बोझ कैसे लादें। जानने वाले जानते हैं कि कन्या पाठशाला और डी० ए० वी० स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का खुला उपहास होता है। यदि आरम्भ में कुछ प्रार्थना के मन्त्रों का एक साथ उच्चारण और अन्त में शान्ति पाठ या आर्ती का नाम ही धर्म्म शिक्षा है तब तो यह प्रायः सब में होती है। कन्या पाठशालाओं को अध्यापिकाएँ तो प्रायः अनार्य और कहीं २ ईसाई अथवा बंगाली होती हैं। जब अध्यापिकाएँ ही आर्य्य नहीं हैं तो वे कन्याओं को क्या आर्य्य बनायेंगी और उनके द्वारा वैदिक धर्म्म का क्या प्रचार होता है यह मैं नहीं समझ सका। वर्तमान नियमों के अनुसार कोई शिक्षक या अध्यापिका बिना ट्रेण्ड हुए नहीं रक्खी जा सकती। यदि कोई रक्खे तो उसको सहायता मिलने में रुकावट डाली जाती है। कई साल हुए एक कन्या पाठशाला में कन्या महाविद्यालय की स्नातिका रखली गई। इस पर इन्सपेक्टर नाक भौं सिकोड़ने लगी। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि ये संस्थाएँ बिल्कुल निरर्थक हैं पर जितनी शक्ति उन पर लग रही है उसका फल हमें नहीं मिल रहा।

आर्य्यसमाज की अन्य संस्थाओं के सम्बन्ध में वे लिखते हैं:—

( ) इन संस्थाओं से आर्य्य समाज या वैदिक

धर्म्म को बहुत ही कम लाभ है।

(२) इन संस्थाओं का पृथक बोर्ड होना चाहिए जिनका समाज की अन्तरंग सभा से कोई सम्बन्ध न हो।

(३) जो संस्थाएँ प्रतिनिधि-सभा से सम्बन्धित रहना चाहें उन्हें कुछ शुल्क प्रति वर्ष देना चाहिए जिससे इन्सपेक्टर्स नियत किए जायें और इन इन्सपेक्टरों के ऊपर एक अधिष्ठाता विद्या-विभाग होना चाहिए।

(४) भविष्य में उसी दशा में संस्थाएँ खोली जायँ जब उसके लिये कोई निश्चित धन दे या ट्रस्ट बनाए।

लड़कियों का नया संसार

नई लहर (पश्चिमी लहर) ने हमारे नारी समाज का जो अहित किया है वा इस समय जो अहित वह कर रही है उसका देश के समझदार व्यक्ति चिन्तापूर्वक अध्ययन कर रहे हैं। 'लड़कियों का संसार' शीर्षक में 'हिन्दू' में श्री भाई परमानन्द जी लिखते हुए उस अहित पर निम्न शब्दों में प्रकाश डालते हैं:—

नबीन युग ने दो प्रकार की क्रांति उत्पन्न की है। प्रथम तो यह कि धीरे धीरे लड़कियों के स्कूल इतने बढ़ गये कि अब शायद ही कोई क़स्बा या गांव इनसे खाली हो। लाहौर जैसे शहरों में तो लड़कियों के कॉलेज दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जाते हैं। इस का परिणाम यह हुआ है कि लड़कियों को घर का काम काज करने का अभ्यास नहीं रहा है और स्त्रियों से जो घर का काम किया करती थी वह काम छिन गया है। अब कपड़ा विदेशों से इतना सस्ता आने लगा है कि चर्खा कातना समय नष्ट करना समझा जाने लगा है। रेशमी कपड़ा भी इतना सुन्दर बुनने लगा है कि दहेज के लिए न घर के कपड़े की आवश्यकता रही है न कशीदा के काम को। प्रत्येक कस्बे और नगर में आटा पीसने की चक्कियाँ लग गई हैं। जहाँ घर में चक्की होती थी, अब वह कहीं भी देखने में नहीं आती। पानी के लिए बड़े शहरों में नलके लग गए हैं। कस्बों और गाँवों में निसन्देह 'पानी लाने का' काम अभी बस्तियों के लिए रह गया है।

लड़कियों के सन्मुख भी अब लड़कों वाला प्रश्न उपस्थित है। लड़की ने प्राइमरी पास करली है अब वह क्या करे? अब उसने इन्ट्रेंस पास कर लिया अब क्या करे? कॉलेज की पढ़ाई समाप्त करके वह क्या करे? अभिप्राय यह कि कोई काम करने के लिए नहीं रहा, इस लिए शिक्षा के पीछे पड़े रहना आवश्यक हो गया है। इससे भी कठिन प्रश्न यह है कि इस शिक्षा से लाभ क्या है? लड़कों के लिए तो यह जितनी हानि कारक सिद्ध हुई है सबको ज्ञात है। चारों ओर से आवाज़ आ रही है कि इस शिक्षा ने हमारे नवयुवकों को अपाहिज बना दिया है। परन्तु लड़कियाँ इसी शिक्षा के पीछे दौड़ रहीं हैं। इसके भयावह परिणाम हमें दिखाई पड़ रहे हैं। एक ओर तो स्वतन्त्रता की चाहने वाली नेत्री हैं जो लड़कियों को बताती हैं कि पतियों की दासतामें रहना विपत्ति है, छोड़ दो, पतियों को! तुम्हारे लिए सिनेमा, थियेटर खुले हैं, रुपया कमाओ और मौज उड़ाओ!" दूसरी ओर शिक्षा प्राप्त, पतित कुछ नवयुवक हैं जो विवाह करने के लिए अपनी क़ीमत मांगते हैं। माँ बाप लड़कियों

की शिक्षा पर सब कुछ व्यय कर देते हैं। (लड़की को उच्च शिक्षा देना लड़के की शिक्षा से मँहगा पड़ता है) इस लिए मां बाप भावी दामादों को इच्छानुसार धन नहीं दे सकते। परिणाम यह है कि निराश होकर लड़कियां आत्म हत्या करना अच्छा समझती हैं। अभी इसके और क्या २ परिणाम होंगे यह भविष्य के गर्भ में है। वे एक एक करके हमारे सामने आजायँगे।

भारतीय संस्कृति का मूल

लार्ड कर्ज़न की वजह से ही खुदाई का कार्य्य भारत सरकार का उत्तरदायित्व स्वीकार किया गया था और १६०२ में 'पुरातत्व विभाग' स्थापित किया गया था। १६२३ तक अशोक के समय के पहले का कोई उल्लेख योग्य स्मृति चिह्न नहीं मालूम हो सका था और युरोपीय विद्वानों का बहुत दिनों तक यह विश्वास रहा था कि भारतीय संस्कृति का मूल यूनानी सभ्यता है। 'साइंस और कलचर' नामक पत्र इस सम्बन्ध में प्रकाश डालता हुआ सिद्ध करता है कि भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन संस्कृति है:—

१९ वीं शताब्दी के लगभग आरम्भ में भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में बड़े विरोधी भाव प्रचलित थे। हिन्दू लोग अपनी संस्कृति को बहुत प्राचीन अर्थात ब्रह्मा के समय की मानते थे और वे अपने दुर्भाग्य का कारण धर्म्म से पतित हो जाना बतलाते थे। विपरीत इसके यूरोपियनों का विश्वास था कि भारतीय संस्कृति अपेक्षाकृत आधुनिक है (जैसा कि स्मिथ रचित इतिहास से स्पष्ट है और जो 'प्राचीन भारत' का वर्णन सिकन्दर के आक्रमण के समय से प्रारम्भ करता है। —सम्पादक सार्वदेशिक) यूरोप के कुछ विद्वानों का यह भी विचार था कि संस्कृत चालाक ब्राह्मणों का आविष्कार है और उनके महाभारत और रामायण जैसे काव्य यूनान और रोम के काव्यों की नक़ल हैं। उनका यह भी विचार था कि हिन्दुओं के धार्मिक विचार 'बाइबिल' से लिए गए हैं और आयुर्वेद और रसायन-शास्त्र को मिला कर अन्य विज्ञान यूनान के विजेताओं से प्राप्त किए गए हैं। परन्तु यह प्रसिद्ध है कि बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने भारतीय सरकार की आर्थिक सहायता से काम शुरू करके लगभग १०० वर्ष पर्य्यन्त परिश्रम करके भारत के भूतकाल पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है और भारतीय तथा युरोपीय संस्कृति के मूल से सम्बन्धित पुरानी स्थापनाओं को लगभग ग़लत सिद्ध कर दिया है। बहुत से बौद्ध कालीन शिलालेख इत्यादि प्राप्त हुए थे। परन्तु चूँकि बौद्ध सभ्यता, भले ही वह कितनी महिमामय रही हो, सिकन्दर के भारत के हमले के बाद की थी इसलिए युरोप के लोगों का यह विश्वास कि भारतीय संस्कृति पर यूनान की छाप है नहीं हट सका था।

हम विशेषतया श्रीयुत सर जान मार्शल के कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने सहकर्मियों को भारतीय जगहों की खुदाई का काम करने का अलभ्य अवसर प्रदान किया। राय बहादुर दयाराम साहनी ने १९२१ में हरप्पा को खोदा और महेनजों को १९२२ में श्री आर० डी० बनर्जी ने खुदवाया। श्रीयुत बनर्जी ने निकली हुई मुहरों और वस्तुओं के आधार पर तत्काल जान लिया कि वे

बिछुड़ों का मिलाप तथा रक्षा कार्य्य

—गत २० अप्रैल को त्रिकम गन्तूर में जो मंसूर रियासत में एक जिले का हेड आफिस है आर्य समाज विश्वेश्वरपुर बंगलोर सिटी की ओर से श्री प० सुब्रह्मण्यसिंह शास्त्री भास्कर पंत ने श्रीमती रमणम्मा और उनकी पुत्री शांतम्मा व पुत्र अप्पुराव की शुद्धि की। ये जन्म से ईसाई थे। यह कार्य म० श्यामराव के प्रयत्न से हुआ।

—गत २४ अप्रैल को आ० स० रामनगर (चम्पारन) द्वारा २ नव मुस्लिमों और ६ जन्म के मुसलमानों कुल ८ व्यक्तियों की शुद्धि की गई। शुद्धि के बाद नैपाल इलाका तराई के थारु क्षत्रियों ने अपनी बिरादरी में मिलाकर इस शुद्धि को चार चांद लगा दिए। ये ८ व्यक्ति मौजा बेतिया (चम्पारन) के हैं और जन्म की मुसलमान ३ कन्याओं के साथ विवाह का नाता भी जोड़ लिया गया है। इस कार्य्य में सैकड़ों सनातनी भाइयों ने पूरा २ योग दिया है।

देवशरण शर्मा प्रधान

—१६-४-३६ को आर्य समाज दातागंज में नूर मोहम्मद नव-मुस्लिम की जो ७ वर्ष पूर्व अपने भाइयों के साथ मनोमालिन्य हो जाने के कारण मुसलमान हो गया था, शुद्धि की गई।

रामस्वरूप मन्त्री

—रियासी निवासी म० प्रेमचन्द्र को जो कतिपय मुसलमानों की कुसंगति में पड़ कर मुसलमान हो गये थे उनके पश्चात्ताप करने पर शुद्ध किया गया।

मन्त्री, आ० स० मीरपुर (जम्मू)

—सी० पी० प्रांत में ईसाईयों का अधिक जोर है, आर्यसमाज द्वारा इस वर्ष ३०० शुद्धियां हुई हैं।

—आर्य्य समाज शेखूपुराने गत ३०-४-३६ को जन्म के एक ईसाई को शुद्ध किया। उसका नाम मदनलाल रक्खा गया है।

मन्त्री

चीजें बौद्ध-भारत कालीन भारत की चीजों से सर्वथा भिन्न हैं। श्रीयुत मार्शल ने २०-९-२४ के इलस्ट्रेटेड लंडन 'न्यूज' नामक पत्र के द्वारा इन चीजों की ओर जनता का ध्यान खींचा और उसके फल स्वरूप संसार का पुरातत्व जगत आश्चर्य चकित रह गया और बड़े बड़े पुरातत्व विशारद यह समझ गए कि भारत-वसुन्धरा के नीचे अभी भी बहुत से 'आश्चर्य' प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन मालूमात का एक नैतिक प्रभाव यह पड़ा है कि इसने बहुत से युरोपियनों के इस विश्वास को कि 'भारतीय संस्कृति का मूल यूनानी सभ्यता है, नष्ट कर दिया है

इसने भारतीयों के इस विश्वास को दृढ़ कर दिया है कि उनकी प्यारी भूमि मानवी सभ्यता की जन्मदात्री है।"

—ता० ११-५-३६ को आर्य्य समाज रुड़की ने एक नव मुस्लिम अब्दुररहमान की, जो ४ माह पहले सहारनपुर में ज़बरदस्ती मुसलमान बना लिया गया था, शुद्धि की और उसका पहला नाम हरिश्चंद्र रक्खा। यह युवक क़ौम का सिगानी था।

—ता० १२-५-३६ को एक जन्म के मुसलमान रफ़ीक अहमद क़ौम गाड़ा की शुद्धि की और उस का नाम प्रेम नारायण रक्खा।

रामचन्द्र मन्त्री

—बल्लरशा जिला चांदा (सी, पी) की किसी कोयले की खान के बन्द हो जाने के कारण एक ग़रीब परिवार के ४ व्यक्ति जिसमें ३ पुरुष और एक स्त्री है रोटी की खोज में कभी रेल से और कभी पैदल यात्रा करते हुए ता० ६ मई को बुरहान पुर आए। किसी तरह वे स्थानीय आर्य कुमार सभा के प्रधान जी से मिले। इसपर उनके भोजनादि की तत्काल ही व्यवस्था करदी गई क्योंकि वे लोग ४ दिन से बिल्कुल ही भूखे थे। साथ ही उन्हें यह भी कह दिया था कि वे दूसरे दिन मज़दूरी के लिये आएं। इस बीच में एक 'हज़रत' उनके पास पहुँच गये और आठ आने रोज़ की मज़दूरी का लालच देकर उनको मस्जिद में ले गये। वहां उनसे कहा कि तुमने बहुत दिनों से हजामत नहीं बनवाई है इस लिए तुम हजामत बनवालो। हजामत बनवाने पर बिचारों को ज्ञात हुआ कि उनकी चोटी उड़ादी गई है और दाढ़ रहने दी है। उन्हों ने कुछ कहा सुना भी परन्तु उसका परिणाम केवल इतना ही हुआ कि उन्हें मसजिद से बाहर जाने नहीं दिया गया। यह समाचार जब आर्य कुमार सभा के कार्यकर्त्ताओं को ज्ञात हुआ तो उन्होंने उन लोगों को मसजिद से रात को ही निकाला। दूसरे दिन आर्य कुमार सभा के मन्त्री उनमें से दो आदमियों को मजदूरी दिलाने के लिए ले जा रहे थे तो उन पर चौक बाज़ार में क़रीब ५०-६० गुण्डों ने हमला कर दिया और उन दो आदमियों को घसीटते हुए जबरदस्ती मसजिद में ले गये। इसके बाद पुनः उन व्यक्तियों को छुड़ाया गया। अब वे सुरक्षित हैं और उन्हें मज़दूरी भी दिलाई गई है।

—पुनिया देवी नामक एक विधवा स्त्री को उसके एक रिश्तेदार ने ३०) में एक पान वाले को बेच दिया था। आर्यकुमार सभा बुरहानपुर ने श्री मुन्नालाल जी शाद के प्रयत्न से उसे छुड़ा कर सर गंगाराम विधवाभवन रायपुर भेज दिया।

विनयकुमार
मन्त्री, आर्यकुमार सभा
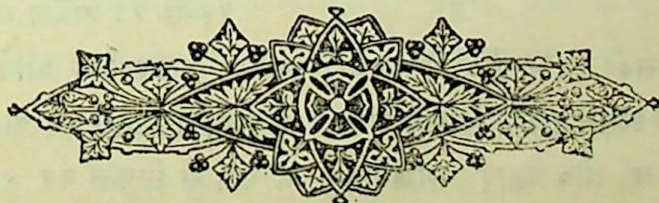
देश देशान्तर—द्वीप द्वीपान्तर प्रचार

रियासत हैद्राबाद दक्षिण में आर्य्य प्रतिनिधि सभा निज़ाम की ओर से वैदिक धर्म के प्रचार की धूम
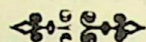
९ मार्च से १२ मार्च सन् १९३६ ई० तक आर्य्य समाज लातुर ने अपना होली-उत्सव बड़ी शान से मनाया। इस उत्सव पर बंसी लाल वकील हाईकोर्ट व श्री० लक्ष्मण राव जी ओघले व श्री० आर्य्य भानुजी व श्री० प्रह्लाद जी भजनीक पधारे थे। बड़ा उत्तम प्रभाव रहा। बावजूद फ़िसाद के आर्य्य समाज अपना प्रचार बराबर करता रहा।

१८ व १९ मार्च स० १९३६ ई० को आर्य्य समाज उदगीर में श्री० पंडित रूद्रदत्त जी शास्त्री व श्री० गोविंद राम जी भजीनक द्वारा प्रचार किया गया।

१८ से २० अर्दिबेहेश्त स० १३४५ फ० तक आर्य्य समाज चिटगोपा ने सहस्रों की हाजरी में बड़ी शान से अपना वार्षिकोत्सव मनाया इस उत्सव पर श्री० बंसी लाल वकील व श्री० गोविंद-राम जी भजनीक व श्री० नरेन्द्र जी उपदेशक पधारे थे।

१९ व २२ मार्च स० १९३६ ई० को आर्य्य समाज शाहाली बड़े का उत्सव हुवा। जिसमें श्री० पं० रूद्रदत्त जी शास्त्री व श्री० प्रह्लाद भजनीक के उपदेश व भजन हुवे, शंका समाधान भी होता रहा। प्रातः हवन व उपदेश होता था।

२५ व २६ मार्च १९३६ ई० को आर्य्य समाज उसमानाबाद का उत्सव हुआ, इस उत्सवपर श्री० प० नरेन्द्रजी उपदेशक व श्री० प्रह्लादजी भजनीक पधारे थे।

२६ से २८ मार्च स० १९३६ ई० को आर्य्य समाज मोमिनाबाद के उत्सव पर श्री पं० रूद्र दत्त जी शास्त्री व बंसी लाल वकील व श्री० गोविंद-राम जी भजनीक गये थे। उपदेश व भजन, व्याख्यान शंकासमाधान किया गया।

३ व ४ अप्रैल को हली खेड आर्य्य समाज की ओरसे मेले पर प्रचार हुआ श्री बंसीलाल वकील के व्याख्यान व श्री० प्रह्लाद जी के भजन हुवे।

५-६ अप्रैल स० १९३६ ई० अम्बोलगा आर्य्य समाज की ओर से प्रचार किया गया। यहां बंसी लाल वकील व श्री० प्रह्लाद जी ने उप-देश व भजन द्वारा प्रचार किया। पौराणिकों की शंकाओं का समाधान किया। जनतापर अच्छा प्रभाव रहा।

११ से १३ अप्रैल स० १९३६ ई० को आर्य्य समाज गुलबर्गा का वार्षिकोत्सव बड़ी शान शौकत से मनाया गया। १२ अप्रैल को नगर कीर्तन प्रातः ८ बजे से निकल कर २ बजे वापिस आया। इस उत्सव पर बंसी लाल वकील व श्री० पं० रूद्र दत्त जी शास्त्री व श्री० गोविंद राम जी व श्री प्रह्लाद भजनीक पधारे थे। प्रातः हवन, उपदेश, भजन

हुए। दोपहर में शंका समाधान रात्री में व्याख्यान भजन होते थे। हाजरी से पिण्डाल खचाखच भर जाता था।

१५ से १८ अप्रैल स० १६६६ ई० को हजारों की हाजरी में आर्य्य समाज सुलतान बाजार हैद्राबाद का वार्षिकोत्सव हुआ। एक दिन सर्व धर्म सम्मेलन हुआ। विषय था "सृष्टि-उत्पत्ति का अभिप्राय" सभी धर्म के प्रति निधि पधारे थे। इस उत्सव पर श्री० पं० रुद्र दत्त जी शास्त्री व श्री० पं० नरेन्द्र जी व श्री० प्रह्लाद जी बंसी लाल वकील आर्य्य प्रतिनिधि सभा की ओर से पधारे थे। प्रातः हवन, भजन, उपदेश दोपहर में शंका समाधान साय' व्याख्यान भजन होते थे।

इसके पश्चात आ० स० महाराजगंज का उत्सव हुआ। सभाकी ओर से यहां श्री० पं० नरेन्द्रजी व भजनीक श्री० गोविंद राम जी ने प्रचार किया।

२४, २५, २६, अप्रैल को आर्य्य स० उदगीर की ओर से प्रचार किया गया। इस में श्री० पं० देवेन्द्र नाथ जी शास्त्री व बँसी लाल वकील व श्री० गोविंद राम भजनीक व श्री० प्रहलादजी शरीक रहे। चूंकि लिंगायत समाज ने अपना उत्सव मनाकर आर्य्य समाज के विरुद्ध खूब विष उगला अतः आर्य्य समाज उदगीर ने उसका उत्तर देकर जनता के सम्मुख झूठे का भांडा फोड़ कर रख दिया।

इस प्रकार जो वैदिक धर्म का प्रचार करके जनता को ओ३म् के झण्डे के नीचे एकित्रत कर रही है आशा है कि दानी सज्जन अपना कर्तव्य पालन करके सभा का उत्साह बढ़ायेंगे।

—

सामाजिक जगत

विधवा विवाह

(१)

महमौरा ग्राम की एक ब्राह्मण विधवा का विवाह भलाई निवासी ठा० गोकुलसिंह जो के उद्योग से सिधारपुर के मानी नामक ब्राह्मण के साथ हुआ।

नाहर सिंह सोदलपुर

(२)

१६ अप्रैल को बावली में श्री लाला हरगुलाल मल की सुपुत्री का जो अभी हाल में विधवा हो गई थी पुनर्विवाह कांधला (मुजफ्फरनगर) के ला० जानकी प्रसाद जैन के साथ हो गया। इस प्रान्त में यह सबसे पहला पुनर्विवाह है जो साङ्गोपांग विधि से हुआ और जिसको कान्धला की जैन-समाज ने उचित मान लिया। बिवाह संस्कार सनातन धर्म के पण्डित शंकर दत्त शर्मा ने जैन पद्धति के अनुसार कराया।

आवश्यक सूचना

आर्यसमाज विसनगर Via मसाना जंकशन B. B. & C. I. (Meter Gauge) के मन्त्री जी चाहते हैं कि आर्य्य समाज के जो सन्यासी तथा उपदेशक अजमेर से बम्बई की ओर उपयुक्त छोटी लाइन से जाया करें वे कृपया मार्ग में उतर कर उनके यहां भी प्रचार कर दिया करें और अपने पहुँचने इत्यादि की सूचना पूर्व से दे दिया करें।

मन्त्री,
सार्वदेशिक सभा, देहली

आर्य प्रतिनिधि सभा हैद्राबाद (दक्षिण) का वार्षिक चुनाव

प्रधान—श्री० पं० विनायकरावजी विद्यालंकार बार एट ला हैद्राबाद।

उपप्रधान—श्री० विद्यामित्र उर्फ शामलालजी वकील उदगीर।

मन्त्री—श्री वंशीलाल आर्य्य वकील हाईकोर्ट।

उपमन्त्री—श्री० रामचन्द्रजी आर्य्य नलगीर।

कोषाध्यक्ष—त्र्यम्बकरावजी साहू लातुर।

पुस्तकाध्यक्ष—श्री दत्तात्रय प्रसाद जी वकील हाईकोर्ट गुलबर्गा।

अन्तरङ्ग के सदस्य

श्री० पं० नरेन्द्रजी हैद्राबाद, श्री० वीरभद्रजी औराद, श्री० हीरामन जी उदगीर, श्री० बालकृष्ण जी बुलारम, श्री० गणपत राय जी कथले, श्री० रामस्वरूप जी रायचूर, श्री गणेश लाल जी हिंगोली, श्री० तुलजा राम जी धाराशिव, श्री० हमुल जी धारूर।

बनसीलाल आर्य्य वकील हाईकोर्ट
मन्त्री आ० प्र० नि० सभा निजाम राज्य

सार्वदेशिक सभा की आवश्यक सूचनाएँ

१

प्रसन्नता है कि इस वर्ष आर्य्य समाजों ने सभा के आदेशानुसार व्यापक रूप से आर्य्य-समाज स्थापना दिवस मनाया है और यह स्पष्ट कर दिया है कि आर्य्य समाजों ने इस पर्व को वही महत्व देना शुरू कर दिया है जो उसे दिया जाना चाहिए। सभा ने समाजों को प्रेरणा की थी कि वे इस अवसर पर प्रति आर्य कम से कम ।) देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर प्रचार के लिए संग्रह करके सभा में भेजें। हर्ष है, कतिपय समाजों ने अपना अपना भाग भेज दिया है। बहुत से बाकी हैं जिनका भाग अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। वे समाजें कृपया यथा सम्भव शीघ्र अपना भाग भेज देवें। आशा है समाजें इस निवेदन पर विशेष ध्यान देंगी।

देशबन्धु मन्त्री
सार्वदेशिक सभा
देहली

२

समस्त आर्य्य समाजों को सहर्ष यह सूचना दी जाती है कि श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने, जिन्होंने दस वर्ष से अधिक श्री मद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय गुरुदत्त भवन लाहौर के आचार्य्य पद का कार्य्य सफलता पूर्वक करके उस काम को अब छोड़ दिया है और जो इस वर्ष, सार्वदेशिक सभा के गत निर्वाचन में प्रशंसित सभा के उपप्रधान भी निर्वाचित हुए हैं, हमारी प्रार्थना स्वीकार करके देहली को अपना हैड क्वार्टर बना लिया है और बलिदान भवन में रहने लगे हैं। आशा है कि स्वामीजी की उत्तम योग्यता और विशाल अनुभव से सार्वदेशिक सभा के कार्यों के संचालन में बड़ी मूल्यवान सहायता मिलेगी।

नारायण स्वामी
प्रधान

❁ दान सूची ❁

सार्वदेशिक सभा बावत मास मार्च-अप्रैल १९३९

५००) श्री, पं० गंगाप्रसाद जो चीफ जज टिहरी
(सभा की आजीवन सदस्यता की राशि)
५००) श्री पण्डित चमूपति जी ,, ,,
६००) श्री सेठ जुगल किशोर जी बिरला
(वेद प्रचारार्थ)
१०६) श्रीमतीदेवी महादेवी जी पारामारिबो
डच गयाना (विदेश प्रचार)
२५) श्री पण्डित ठाकुरदत्त जी अमृतधारा लाहौर
(साहित्य वितरण के लिए)
५) आ० स० हापुड़ (मेरठ) (वेदप्रचार)
४॥) श्री० बा० मेहर चन्द जो पुरी देहली ,,

१७४०॥)

आर्यसमाज स्थापना दिवस

४॥) सिटी आर्य्य समाज मंगलौर (मद्रास)
५) श्री० चौ० हरवंशलाल गुप्त सहारनपुर
५) आ० स० उदगीर पो० लातूर (निजाम राज्य)
५।। =) ,, ,, डगशाई (पंजाब)
७।।।) ,, ,, उन्नाव
३।) ,, ,, हाथरस
४।=) ,, ,, सीपरी बाजार झांसी
१३।।।) ,, ,, पेशावर सिटी
१०) ,, ,, रानी का तालाब फीरोजपुर सिटी
५।।) ,, ,, बहजोई (मुरादाबाद)
३।=) ,, ,, अलवर
२५) ,, ,, हर भगवान बाटरा एसिस्टेन्ट इंजीनियर ननकाना साहिब (शेखूपुरा)
४) ,, ,, गणपति सिंह जी रईस डिबाई
(बुलन्द शहर)
१।।।) ,, ,, इस्लाम नगर (बदायूँ)

९८।।।=)

१८३९।=) सर्व योग।

दान दाताओं को धन्यवाद।

कोषाध्यक्ष
सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

साहित्य-समीक्षा

राजस्थान वनिता आश्रम (मदारगेट) अजमेर

६ वर्षीय रिपोर्ट (सचित्र)

[१-४-२८ से ३१-३-३४ तक ।

इस आश्रम में घरों से निकाली हुईं वा अन्य प्रकार से सताई हुईं असहाय, दुखी और निराश्रिता देवियों, सधवाओं, विधवाओं तथा अविवाहिताओं तथा अनुचित रीति से गर्भवती देवियों की तथा उनके गर्भ की रक्षा की जाती है। जो विधवा शादी करना चाहती है उसकी अच्छे वर से शादी करदी जाती है। जो देवी अपना जीवन आश्रम में रहकर ही व्यतीत करना चाहती है उसके रहन सहन और आवश्यकतानुसार पढ़ाई इत्यादि का प्रबन्ध किया जाता है। अनुचित गर्भ के बच्चों की रक्षा की जाती है। वे गोद दे दिए जाते हैं वा आश्रम की ओर से उनके पालन-पोषण और शिक्षा आदि का प्रबन्ध कर दिया जाता है।

कार्य विवरणान्तर्गत ६ वर्षों में ४३२ कष्ट पीड़ित देवियों तथा ८ अनाथ बच्चों की रिपोर्ट आश्रम को मिली। उनमें से बहुतों को सहायता दी गई और २४२ देवियां आश्रम में ४५ बच्चों के साथ प्रविष्ट की गईं। इनमें से ३७ के विवाह हुए, १८४ उनके घर पहुँचाई गईं वा सम्बन्धियों के सुपुर्द की गईं। शेष में से कुछ चली गईं। कुछ पृथक की गईं कुछ आश्रम में रहीं, कुछ शिक्षा संस्थाओं वा दूसरे आश्रमों में भेजी गईं।

इन वर्षों में दान, भोजन व्यय, सूद इत्यादि स्रोतों से २६११८।)॥ की आय तथा २६५३१।।≡)॥। व्यय हुआ जिसकी पूर्ति पिछली बचत से की गई।

आश्रम का भवन मदारगेट पर स्थित है और प्रबन्ध एक ज़िम्मेवार प्रबन्ध-कर्तृ सभा के आधीन है जिसके अधिकारी प्रतिष्ठित और जनता में स्थान रखने वाले सज्जन यथा प्रो० घीसूलाल जी तथा कुँवर चान्दकरण जी शारदा प्रभृति सज्जन हैं।

आश्रम में पढ़ाई, शिल्प शिक्षण इत्यादि का प्रबन्ध है तथा अच्छी दिन चर्य्या नियत की हुई है।

× × ×

कुमायूँ आर्य्य अनाथालय

[दशम वार्षिक विवरण]

यह अनाथालय गत १० वर्ष से पहाड़ी प्रदेश में हिन्दू समाज के अनाथ बालक बालिकाओं के भरण-पोषण, शिक्षा तथा उनकी विधर्मियों से रक्षा का पुण्य कार्य कर रहा है। अनाथालय के दो मुख्य स्थान एक हल्द्वानी और दूसरा अलमोड़ा है। इन दोनों स्थानों पर अनाथालय के अपने निजू भवन हैं। कार्य विवरणान्तर्गत वर्ष में अनाथालय में २८ अनाथ बच्चे तथा लड़कियां और देवियां प्रविष्ट हुईं और २४ अनाथ बच्चे तथा ७ लड़कियां और देवियां उनके वारिसों के पास पहुँचाये तथा पृथक किए गये। विविध स्रोतों

महिला-जगत

(सम्पादिका—श्रीमती विद्यावतीजी विशारदा)

गृहस्थ जीवन का एक मुख्य कर्तव्य*

पुरुष और स्त्री मिलकर ७ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गृहस्थ में प्रवेश किया करते हैं। वे ७ उद्देश्य इस प्रकार हैः—

(१) सन्तानोत्पत्ति और सन्तानों का पालन पोषण शिक्षण रक्षा इत्यादि।

(२) अन्न प्राप्ति

(३) बल सम्पादन

(४) धनोपार्जन तथा उसका रक्षण

(५) सुखोत्पत्ति

(६) ऋतुओं को अनुकूल बनाना

(७) पारस्परिक मित्रता का संपादन

संतानोत्पत्ति

काम वासना मनुष्य की एक स्वाभाविक वासना है। इसका नियन्त्रण मानवी सुख के लिए अनिवार्य्य हैं। इसका सम्बन्ध केवल सन्तानोत्पत्ति से है न कि उच्छृंखल रीतिसे इसका शिकार बनने से। सन्तानोत्पत्ति सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। 'पितृ ऋण' इसे ही कहते हैं। सन्तानोत्पत्ति के द्वारा अपना प्रतिनिधि देना मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य है। इसी रीति से मनुष्य 'पितृ ऋण' से उऋण होता है। वह प्रतिनिधि श्रेष्ठ होना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखकर मनुष्यों को अपनी सन्तानों को श्रेष्ठ बनाना चाहिए। पुत्र शब्द पु+त्र दो अक्षरों से मिलकर बना है पुः=पवित्र त्र=रक्षा करने वाला। अर्थात् पुत्र वही है जो परिवार को पवित्र और उसकी रक्षा करने वाला हो। यही व्याख्या और अर्थ पुत्र शब्द का है।

सन्तान में ये गुण आते ही तब हैं जब माता पिता स्वयं उन गुणों का अपने सन्तानों में डालने का यत्न करते हैं और स्वयं भी उनको अपने जीवन में धारण करते और व्यवहार में लाते हैं। 'पवित्रता' के लिए 'शुद्धता' और रक्षा के लिए 'सामर्थ्य' और शक्ति की जरूरत होती है। यदि ये गुण सन्तान में हों तो ठीक अन्यथा इन गुणों से रहित सन्तान के पैदा करने से परिवार और समाज को कोई खास

*श्री महात्मा नारायण स्वामीजीकी (आर्य जीवन) नामक अप्रकाशित पुस्तक से।

तथा दान, सूद, बैंड के किराए इत्यादि से ८१६२।≡)। की आय तथा ६५४०।-)। का व्यय हुआ। हिन्दुओं की कट्टरता ईसाईयत और इस्लाम के पहाड़ी प्रदेश में प्रचार सम्बन्धी व्यापक प्रभाव और प्रसार को देखते हुए अनाथालय ने जो सफलता प्राप्त की है वा जो इस समय वह प्राप्त कर रहा है वह नगण्य नहीं है। योग्य संचालन और हिन्दुओं के अधिकाधिक सक्रिय सहयोग और आर्थिक सहायता से जिसका कि वह अधिकारी है यह संस्था बहुत उन्नत हो सकती है और होनी चाहिए।

लाभ ता होता नहीं हां उस सन्तान से परिवार और समाज में एक अनावश्यक वृद्धि हो जाती है। महाभारत में आता है कि उन दिनों माताएँ निर्बल और अयोग्य सन्तान को पैदा करना पाप समझा करती थीं। इस सम्बन्ध में महाभारत में एक बड़ी उत्तम आख्यायिका आती है। वह

आख्यायिका

इस प्रकार है। एक समय सप्त ऋषि जिनमें एक अरुन्धती भी थी यात्रा कर रहे थे। वे चलते चलते एक तालाब पर पहुँचे। वह स्थान बड़ा रमणीक था। उन्होंने खाने के लिए कमल के डंठल तोड़े और स्नान करने के लिए तालाब में घुसे। स्नान करके जब किनारे पर आए तो देखा कि डंठल ग़ायब हैं। उन्होंने किसी आदमी को डंठल ले जाते हुए नहीं देखा था इसलिए संदेह हुआ कि आपस ही में किसी ने छुपा लिए हैं। सन्देह के निवारण के लिये प्राचीन काल में भी 'क़समें' खाने का रिवाज था परन्तु क़समें खाने का तरीक़ा आजकल के तरीक़े से भिन्न था। भरत ननसाल से लौटकर आए थे। राम उनको वापसी के पूर्व ही बन को चले गये थे। भरत कौशल्या के पास गए। कौशल्या ने उन पर यह आरोप लगाया कि रामके बन गमनमें केवल केकई का ही हाथ नहीं है वरन् यह उनकी भी साज़िश (षडयन्त्र) का फल है। भरत के माता कौशल्या के इस सन्देह निवारणार्थ ३२-३३ क़समें खाने का वाल्मीकि रामायण में 'अयोध्या-काण्ड' में ज़िक्र आता है। उन क़समोंमें से भरत ने एक क़सम यह खाई थी कि 'माता' यदि राम के बन जाने में मेरा हाथ हो तो मेरी गति वह हो जो संध्या न करने वाले की होती है। एक दूसरी क़सम यह खाई था 'माता' मैं उस गति को प्राप्त होऊँ, जिसे प्राप्त शिक्षा के अनुकूल मनोवृत्ति न रखने वाले प्राप्त होते हैं। अरुन्धती ने भी सप्त ऋषियों के डंठलों के सन्देह के निवारण के लिए जो क़सम खाई थी वह यह थी कि 'जो पाप माता को अनाचार करने से लगता है, निर्बल सन्तान पैदा करने से लगता है वही पाप डंठल चुराने वाले को लगे।' वस्तुतः उस समय ये सब एक समानपातकके समझे जाते थे। माताएँ जब निर्बल संतान पैदा करना पाप समझती थीं तब ही राम, भीम, अर्जुन इत्यादि पवित्र और बलवान पुत्रों को पैदा करती थीं। दुःख है आज हमारी माताएँ अपने कर्त्तव्यों को भुला देने से हम जैसी निकम्मी सन्तानों को पैदा करती हैं और इसका एक मात्र कारण तैयारी किए बिना सन्तानों का उत्पन्न करना ही है। यदि तैयारी करके सन्तान पैदा की जाय तो कोई वजह नहीं कि उत्पन्न सन्तान न केवल शक्ल सूरत में ही वरन् गुणों में भी आदमी ही होवें।

पुत्र और पुत्री का पैदा करना

पुत्र और पुत्रियों की पैदाइश के सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरंजक बात है। संसार दो भागों में बँटा हुआ है। एक भाग की माताएँ केवल पुत्र चाहती हैं और दूसरे भाग की केवल पुत्रियां। पुत्र इसलिए नहीं चाहतीं कि वह विवाह के बाद अलग हो जाता है। पुत्री के साथ रहने से अपनी

सेवा हो जाती है और अपने से उसका सम्पर्क बना रहता है। पूर्व की माताएँ पुत्र चाहती हैं, पुत्री नहीं, क्योंकि पुत्री का पूत्र में (हमारे यहां) माता पिता से सम्बन्ध छूट जाता है वह पतिकुल को हो जाती है परन्तु पुत्र का सम्बन्ध नहीं छूटता है।

हमारी माताएँ पुत्र ज्यादा चाहती हैं। इसके लिए वे अक्सर इधर-उधर झक मारा करती हैं और अपनी दुर्गति और प्राय: सतीत्व का सर्व नाश कराया करती हैं। पुत्रोत्पत्ति के २ प्रकार हैं। एक स्वाभाविक प्रकार है और दूसरा 'रजोदर्शन' से सम्बन्ध रखने वाला है। जर्मनी के डाक्टरों ने खोज करके बतलाया है कि माता पिता की आयुके अन्तर से पुत्र और पुत्रियां पैदा हुआ करती हैं। उनके परीक्षण के अनुसार १०० लड़कियों के पीछे लड़कों के जन्म का अनुपात इस प्रकार है:—

(१) यदि पिता माता से छोटा हो तो	६०.६
(२) ,, दोनों समान आयु वाले हो तो	६०.०
(३) पिता माता से १ से ६ वर्ष तक बड़ा हो तो	१०३.०४
(४) ,, ,, ,, ६ से ६ ,, ,,	१२४.७
(५) ,, ,, ,, ६ से १८ ,, ,,	१४३.७
(६) ,, ,, १८ या अधिक बड़ा हो तो	२००.०

ये अंक उस वैदिक मर्य्यादा का समर्थन करते हैं जिसके अनुसार वधू की आयु वर की आयु से कम से कम ड्योढ़ी होनी चाहिये।

रजोदर्शन की मर्य्यादा

१६ दिन ऋतु दान के समझे जाते हैं। इनका प्रारम्भ रज दर्शन से हुआ करता है। इन १६ दिनों में जो अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या वा पूर्णिमा आवे उन्हें छोड़ देना चाहिये। शेष में से प्रथम की ४ रात्रियां भी छोड़ देनी चाहिएँ। इनके अतिरिक्त ग्याहरवीं और तेहरवीं रात्रियां भी त्याज्य हैं। पुत्रके इच्छुकोंको छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात्रियों में ऋतु दान उत्तम जानना चाहिए और जिन्हें कन्या की इच्छा हो उन्हें पांचवीं, सातवीं, नवमीं और पन्द्रहवीं रात्रियों में ऋतु दान करना चाहिए। साधारणतया पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव के अधिक होने से कन्या उत्पन्न हुआ करती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि दिन में ऋतु दान सर्वथा वर्जित है। इसका कारण यह है कि स्त्री पुरुष के दिन में संगम करने से प्राण क्षीण होते हैं और शक्ति का ह्रास होता है।

पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये 'चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस' देहली, से प्रकाशित।

अगस्त १९३६ Reg. No. L. 2121.

ऋग्वेद यजुर्वेद

सार्वदेशिक

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक—लाला देशबन्धु विदेश से ५ शिलिंग

स० सम्पादक—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक एक प्रति का ≈)

अथर्ववेद सामवेद

नम्र निवेदन

[लेखक—ला० तोताराम रिटायर्ड स्टोरकीपर N. W. R. आनरेरी सैक्रेटरी]

पंजाब की राजधानी लाहौर में रावी रोड पर एक अनाथालय है जिसका नाम पञ्जाब केन्द्रिय अनाथालय है जिसका प्रबन्ध एक रजिस्टर्ड सभा के आधीन है, जिसके प्रधान श्री पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज उपप्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली हैं। उप-प्रधान श्री पण्डित विशम्भरनाथ जी भूतपूर्व गवर्नर गुरुकुल कांगड़ी, श्री पण्डित ठाकुरदत्त जी वैद्य शास्त्री मुलतान, तथा डा० गणेशी लाल जी M. B B. S. हैं। इस अनाथालय को खुले हुए बीस वर्ष के लगभग हो चुके हैं। इसकी सहायता केवल लाहौर निवासी ही नहीं, प्रत्युत मद्रास, बम्बई, ब्रह्मा, चीन, अफ्रीका तथा अमरीका, अरब इराक में रहने वाले हिन्दू आर्य भाई भी करते रहते हैं। यही कारण है कि यह अनाथालय केवल पञ्जाब में ही नहीं प्रत्युत भारतवर्ष के दूसरे प्रान्तों में भी सर्व प्रिय हो रहा है और दिन प्रतिदिन उन्नति के मार्गपर चल रहा है, यहाँ तक कि अब सरकार भी, जो चोरी किये हुए लड़के लड़कियाँ उनको मिलती हैं, जब तक उनके वारिसों का पता नहीं मिलता, तब तक उनको यहाँ रखती है। इस तरह से अनाथालय में बच्चों की प्रवेश संख्या बढ़ गई है। इस समय तक तो निवास स्थान पर्याप्त था परन्तु संख्या बढ़ जाने से स्थान काफ़ी नहीं होता। इस न्यूनता को पूर्ण करने के लिए प्रबन्धक सभा ने निश्चय किया है कि तीन नवीन कमरे बनवाये जायें, दो बच्चों के लिये और एक हस्पताल के लिये और इनके बनाने के लिये धन की अपील की जावे। इसलिये मैं दानी सज्जनों की सेवा में विनीत भाव से प्रार्थना करता हूँ कि वह इस शुभ कार्य में सभा की सहायता करें ताकि आने वाले अनाथ और निस्सहाय बच्चों को प्रवेश करने में बाधा न पड़े। यदि हम ऐसा न कर सके तो वह बालक जिनको हम स्थान न दे सकेंगे वह अन्य मत वालों के जाल में फंसकर हमेशा के लिए धर्म से पतित हो जायेंगे। जो महानुभाव एक सौ से अधिक रुपया देंगे उनके नाम का पत्थर उन कमरों की दीवारों पर लगवा दिये जायेंगे।

इस अनाथालय के आधीन म्यूनिस्पल कमेटी से मंजूर एक मिडिल स्कूल है जिसमें अनाथालय के तथा बाहर के लड़के पढ़ते हैं। एक दर्ज़ी क्लास है जिसमें लड़के और लड़कियोंको सीने का कार्य सिखाया जाता है तथा बाहर के लड़के भी इसमें काम सीख सकते हैं। आज कल बीस लड़के इस कार्य को सीख रहे हैं। बीस के लगभग लड़के यहाँ से काम सीख कर अपना निर्वाह भली प्रकार कर रहे हैं। अनाथालयमें इस समय ९५ लड़के और २५ लड़कियाँ हैं जिनके निवास, भोजन, पढ़ाई आदि का प्रबन्ध अनाथालय की तरफ से किया जाता है। इस काम के लिये भी सहायता की आवश्यकता है। दानी तथा परोपकारी महानुभावों से प्रार्थना है कि वह इस ओर भी ध्यान करें। और जिस प्रकार की भी सहायता दे सकें देकर पुण्य के भागी बनें अर्थात् आटा, दाल, चावल, घी, दरी, चादर, कम्बल आदि। यह भी स्मरण रहे कि यह दान आप ही की ओर से आ रहा है जिससे यह संस्था चल रही है। आशा है कि आप मेरी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देगें और जिस तरह भी हो सके सहायता देकर इह लोक तथा परलोक में पुण्य के भागी बनेंगे तथा हमें भी कृतार्थ करेंगे।

॥ विषय-सूची ॥

आर्य जाति को नवीन सन्देश
त्याग ! तप !! बलिदान !!!
सार्वदेशिक मासिक-पत्र
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित, विविध-विषय-विभूषित सचित्र मासिक-पत्र
(सम्पादक—श्री लाला देशबन्धु जी
य दि आ प
(१) वैदिक सभ्यता के मर्मज्ञ, कर्मनिष्ठ, सात्विक, प्रेम के उपासक। प्रतिष्ठित आर्य महानुभावों के सात्विक, प्रौढ़ और जीवनप्रद लेख पढ़ना चाहते हैं।
(२) देश के भिन्न-भिन्न धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक नेताओं के मार्मिक समयानुकूल परिस्थिति द्योतक विचारों से लाभ उठाना चाहते हैं।
(३) भूमण्डल की धार्मिक, सामाजिक घटनाओं का ठीक ठीक वर्णन जानना चाहते हैं।
(४) देश-देशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तरों में वैदिक पुण्य-पीयूष प्रवाहित कर देने वाले आर्यसमाज की शिक्षा सम्बन्धिनी सामाजिक, शुद्धि, सङ्गठन, दलितोद्धार विषयक उथल-पुथल मचा देने वाली क्रान्तिकारी संस्थाओं का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं।
तो
आज ही, हाँ आज ही एक पत्र डाल कर सचित्र "सार्वदेशिक" के ग्राहक बन जाइये।
प्रबन्धकर्ता—"सार्वदेशिक" देहली।

ॐ
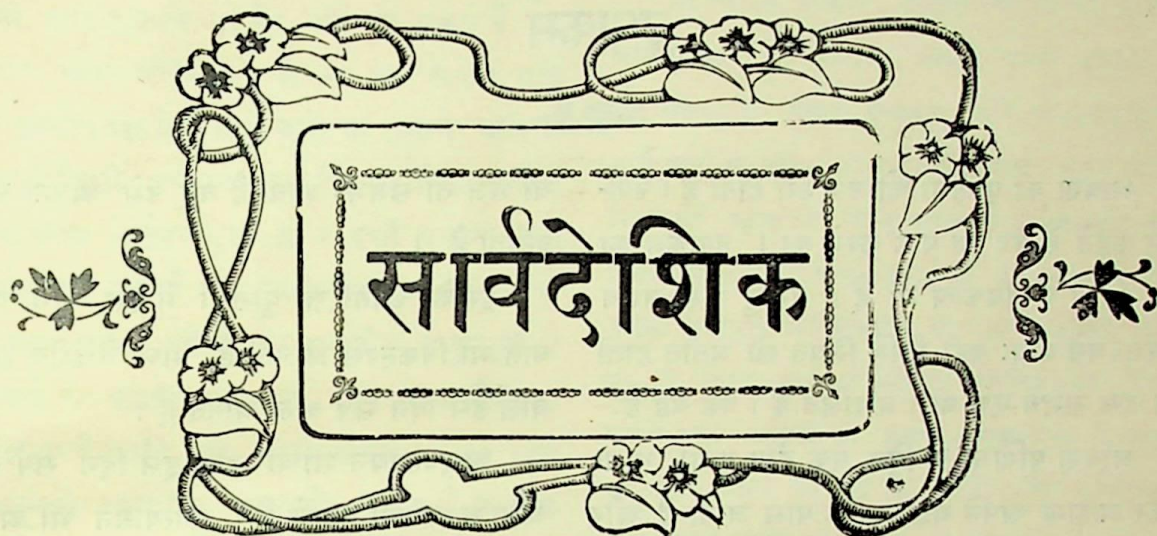
* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख पत्र *

वर्ष १०	भाद्रपद १९९३ अगस्त १९३६ ई०	दयानन्दाब्द ११२	अंक ६

वेद की शिक्षाएँ

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूराः ।
महोभिः व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥

ऋ० म० १ अ० १४ ॥

(ते) वे पूर्वोक्त विद्वान लोग (वसवानाः) अपने गुणों से सब को ढांपते हुए (हि) निश्चय से (महोभिः) प्रशंसनीय गुण और कर्मों से (विश्वाहा) सब दिनों में (वतु) धन आदि पदार्थों की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं तथा जो (अप्रमूराः) मूढ़त्व प्रमाद रहित धार्मिक विद्वान हैं (ते) वे प्रशंसनीय गुण कर्मों से सब दिन (व्रता) सत्य पालन आदि नियमों को रखते हैं ।

भावार्थ—विद्वानों के बिना किसी से धन और धर्म्म-युक्त आचार रक्खे नहीं जा सकते । इससे सब मनुष्य को विद्या प्रचार करना चाहिए जिससे सब मनुष्य विद्वान होकर धार्मिक हों ।

सम्पादकीय—

उपाकर्म
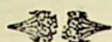
श्रावण की पूर्णिमा को उपाकर्म होता है। उपाकर्म कहते हैं वेद का पाठ करने को। उपाकर्म का इस तिथि में विकल्प भी हैं। परन्तु इस समय भारतवर्षमें प्रायः यही तिथि नियत सी प्रतीत होती है। इस समय एक प्रथा प्रचलित है। वह यह है:-

श्रावण पूर्णिमा के दिन एक रंगा हुआ धागा लेकर ब्राह्मण अपने यजमानोंके पास जाता है और उनके हाथोंमें उस धागे को बांधता है वह उसे कुछ अन्न वा धन देदेते हैं। जिस स य वह धागा बांधता है उस समय एक श्लोक पढ़ता है जिसका पाठ इस प्रकार है:—

गेन वद्धा वलि राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वमपि वध्नामि रक्षे माचल माचल ॥

धर्मसिंधु पृष्ठ ५९।

जिससे दानवेन्द्र महावलि राजा वलि को (वामन भगवान ने) बांधा था उसी से मैं आपको बांधता हूं। रक्षे चलायमान न हो।

वामन और वलि की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है वामनने ३ पग भूमि ली थी जिससे वलिको पताल में पहुँचा दिया था।

दूसरे इस दिन बहन अपने भाई के हाथ में एक सूत वा ऊन की बनी हुई वस्तु बांधती है जिस को रखड़ी कहते हैं। प्रतीत होता है वह रक्षा से ही रखड़ी बनी है। और भाई अपनी बहन को कुछ धन देता है जो स्त्री किसी पुरुष को रखड़ी बांधे वा भेजे तो समझा जाता है वह उसे अपना भ्राता बनाती है।

इसके अतिरिक्त पुस्तकों में इस दिन अन्य बातें भी विकल्पसे मिलती हैं मध्य तैत्तरीय शाखा वाले इस दिन सर्प बलि मानते हैं।

आश्वलायन शाखा वाले इस दिन सर्प वलि और श्रवणाकर्म मानते हैं। कात्यायन भी आश्वलायन वत् सर्प वलि और श्रवणाकर्म कहते हैं। पारस्करादि गृह सूत्र उपाकर्म मानते हैं।

आर्य पर्व पद्धति में इस दिन उपाकर्म ही माना है इसलिए विकल्पों को छोड़कर आर्यों को श्रावण की पूर्णिमा को उपाकर्म अवश्य करना चाहिए। ऋषि दयानन्द जी ने आर्यसमाज के १० नियमों में से तीसरा नियम इस प्रकार लिखा है। 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' ऋषि ने इस नियम में सब आर्यों को वेद के पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का आदेश दिया है। वेद का पढ़ाना तो उपाध्याय ही कर सकते हैं जो अपने शिष्यों को गुरुकुलों वा विद्यालयों में पढ़ाते हैं और उनके शिष्य वहां पढ़ते हैं परन्तु दूसरे आर्यसज्जनों को इस दिन से वेद के पढ़ने का कार्यारम्भ करना चाहिए। वह नियम से वेद का पाठ उपाकर्म से आरम्भ करे यदि संभव हो तो, उनको जो पढ़ नहीं सकते हैं, सुनावें और वह नियम से वेद पाठ

सुनें। जहाँ जहाँ आर्य समाजें हैं उनको समाज मन्दिर में श्रावण पौर्णिमा से वेद की कथा आरंभ करनी चाहिए ताकि जो वेद नहीं पढ़ सकते हैं वह सुनकर अपने जीवन को सफल बना सकें। यदि कहीं दुर्भाग्यवश वेद पढ़ने वाले वा सुनाने वाले न हों वहाँ किसी धर्मग्रन्थ का ही पाठ होना चाहिए ताकि श्रोता धर्मपरायण हों। इसी प्रकार जहाँ आर्यसमाजें नहीं हैं वहां व्यक्तिगत् पाठ का आरंभ करें यथा सम्भव औरों को सुनावें। मनुस्मृति में उपाकर्म के पश्चात् उत्सर्जन काल माघ पौर्णिमा को लिखा है यदि कोई इतना समय न कर सके तो न्यून से न्यून एक मास तो यह कार्य अवश्य करना चाहिए और यदि अधिक पाठ भी न कर सकें तो एक मन्त्र का पाठ प्रतिदिन होना ही चाहिए। अथवा किसी अन्य धार्मिक ग्रंथ का स्वाध्याय एक मास किया जाय।

इस समय आर्यसमाजी प्रायः नगर के बाहर जाकर किसी नदी में स्नान करते हैं और स्नान के पश्चात हवनादि करके उपवीत बदल लेते हैं। यदि वह उपवीत के साथ २ अपने मन को न्यूनसे न्यून एक मास के लिए स्वाध्यायशील बना लें तब तो उनको उपाकर्म का फल मिल ही जाय यदि ऐसा न करें तो केवल यज्ञोपवीत बदलना लाभदायक न होगा। मैं आशा करता हूं 'सार्वदेशिक' के पाठक मेरी इस विनय पर कुछ न कुछ ध्यान देंगे।

—स्वतन्त्रानन्द

स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द—

श्री स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द जी की मृत्यु में आर्य जगत और मुख्यतः बम्बई प्रान्त अपने एक श्रेष्ठ संन्यासी, उत्तम प्रचारक और अध्यवसायशील कार्य कर्त्ता से वंचित हो गया और उस समय में जब कि बम्बई प्रान्त के हिन्दू जगत् को मुख्यतया आर्य समाज को अछूतोद्धार कार्य्य के सफल संचालन में उनकी अनिवार्य आवश्यकता थी, जब वे डाक्टर अम्वेद कर की हिन्दू धर्म विरोधिनी प्रगतियों को निष्क्रय बनाने तथा अछूतों को उनके मोहक जाल से बचाने का पवित्र कार्य कर रहे थे। इसे हम आर्य जगत और बम्बई प्रान्त का दुर्भाग्य ही समझते हैं।

स्वामी जी हृदय और मस्तिष्क के गुणों से विभूषित थे। शरीर और मन की तुच्छ एषणाओं से ऊपर थे। बड़े त्यागी और तपस्वी थे, बड़े उदार बड़े हँसमुख, बड़े चरित्रवान, बहुत कम ज़रूरत वाले और बड़े हास्य प्रिय थे। उनके व्यक्ति गत और सामाजिक जीवन में समता थी। दोनों ही जीवन आकर्षक थे। ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व किसी भी समाज की अमूल्य सम्पदा होती हैं। स्वामी जी का व्यक्तित्व आर्य्य समाज की अमूल्य सम्पदा ही थी। उसके बंचित हो जाने से सचमुच आर्य समाज की बड़ी क्षति हुई है।

स्वामी जी के जीवन का एक मात्र ध्येय ऋषि मिशन का प्रचार था और उसकी पूर्ति में वे सर्वात्मना अन्तिम क्षण तक लगे रहे। आर्य जनता, प्रचारकों और समाज सेवकों के लिए जिनकी शक्ति और समय का संस्थाओं इत्यादि में दुरुपयोग होता है वे उद्देश्य की पवित्रता और उसकी पूर्ति की सफलता का एक अच्छा

उदाहरण प्रस्तुत कर गये हैं।

परमात्मा दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करे।

❀　❀　❀

मूर्खता पूर्ण कार्य्यवाहि—

पाठक अन्यत्र इंदौर राज्य के एक छोटे पुलीस कर्म्मचारी द्वारा राज्यान्तर्गत मनासा नामक एक स्थान पर आर्य्य-समाज के शांत-प्रचार में अनुचित हस्ताक्षेप का समाचार पढ़ेंगे।

समाचार यह है कि आर्य्य-प्रतिनिधि सभा राजस्थान तथा समाज के कतिपय प्रचारक मनासा नामक स्थान पर प्रचारार्थ गए। वे समाज-मंदिर में ठहरे हुए थे कि स्थानीय पुलीस स्टेशन के एक हैड कान्सटेविल ने उन प्रचारकों के पास जाकर उनके नाम और पते इत्यादि नोट किये। दूसरे दिन जब समाज का प्रचार हो रहा था, वह कान्सटेबिल अन्य ३–४ कान्सटेविलों के साथ प्रचार स्थल पर गया और डरा धमका कर प्रचार बन्द करा दिया। आर्य समाज के कार्य कर्त्ताओं के प्रचार रोकने की लिखित आज्ञा मांगने पर उसने देने से इन्कार कर दिया। कार्य कर्त्ताओं के पुलिस स्टेशन के तत्कालीन इन्चार्ज से लिखित आज्ञा प्राप्त करने के आग्रह पर लिखित आज्ञा तो न मिली, हां प्रचार करने की आज्ञा मिल गई और प्रचार समारोह पूर्वक हुआ। प्रचार की आज्ञा का प्राप्त होना इस बात का सूचक है कि हैडकान्सिटेविल का हस्ताक्षेप नितान्त अनुचित और मूर्खता पूर्ण था। हम राज्य के उच्च कर्मचारियों से निवेदन करेंगे कि ऐसी कार्यवाहियों से राज्य का न्याय बदनाम होता है इसलिए उन्हें देखना चाहिये कि इस प्रकार की कार्यवाहियां दुहराई नहीं जा रही हैं और न्याय बदनाम नहीं हो रहा है।

❀　❀　❀

ईसाइयों की प्रचार प्रगति—

पाठक अन्यत्र 'सामाजिक-जगत्' के स्तम्भों में आर्य-प्रतिनिधि सभा बिहार के प्रधान श्री० पं० वेदव्रत जी का बक्तव्य पढ़ेंगे। पं० जी ने उस बक्तव्य में प्रगट किया है कि विहार प्रान्त में मुख्यतया छोटा नागपुर की जंगली जातियों और हरिजनों में ईसाई मिशनरियों की प्रगतियाँ बड़ी वेगवती हैं, वहाँ आर्य-समाज के प्रचार तथा उन जातियों और लोगों के रक्षण की परम आवश्यकता है और यह शिकायत की है कि ईसाई मिशनरियों को सरकार की ओर से प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिलता है और आर्य्य-समाजी तथा हिन्दू मिशनरियों को निरुत्साहित किया जाता है। ईसाई मिशनरियों को प्रचार की खुली छुट्टी प्राप्त है तथा आर्य-समाज के मिशनरियों की गति-विधि पर पुलीस अवांछनीय निगरानी रखती है और उसका प्रचार उन जातियों तथा लोगों में असम्भव बनाने का यत्न किया जाता है। पण्डित वेदव्रत जी एक जिम्मेवार सभा के अध्यक्ष हैं, उनके प्रगटीकरणों पर सहसाही सन्देह नहीं किया जा सकता है। हिन्दू-समाज तथा सरकार के लिए आवश्यक है कि वे पं० जी के बक्तव्य पर विशेष ध्यान देवें। हिन्दू-समाज विशेषतः विहार के हिन्दुओं का कर्त्तव्य है कि वे उन जातियों और हरिजनों की रक्षा करें और इस काम में विहार की आर्य्य-प्रतिनिधि सभा को वही सहायता और योग प्रदान करें जिसकी

वह अधिकारिणी है और जिसकी वह हिन्दुओंसे उचित रीति से आशा कर सकती है।

ईसाई मिशनों से हम कहेंगे कि वे हवा के रुख को देखें और समझें। इस समय ईसा के सच्चे भक्तों, उसके प्रेमियों और प्रशंसकों के दिलों में ईसाई मिशनों की प्रचार सम्बन्धी अनुचित तथा अवांछनीय प्रगतियों, उनके प्रचारके कुत्सित हथकंडोंके विरुद्ध भयंकर बवंडर उठा हुआ है विशेषतः जन-साधारणको ईसाई बनाने के उनके हथकंडों के विरुद्ध। लोगों के हृदयों को अपनी उदात्त शिक्षाओं से जीतने के स्थान में, भय, धन इत्यादि के प्रलोभनों के द्वारा अपने वाड़े में लाने की ईसाई मिशनों की प्रगतियों को वे धर्म्म-प्रचार की मर्यादा के विरुद्ध तथा ईसा और ईसाई मिशनों का अपमान समझते हैं। लोगों को विशेषतः अशिक्षित लोगों को यह कहकर कि ईसाई हो जाने पर तुम शासक जाति के अङ्ग बन जाओगे, तुम्हारी बेगार बन्द हो जायेगी, सवर्णों के अत्याचारों से तुम बच जाओगे तथा विविध प्रलोभनों के द्वारा जैसा कि अनुभव से तथा पं० जी के बक्तव्य से स्पष्ट है, भोले-भाले व्यक्तियों को ईसाई बनाने की छोटे नागपुर की जङ्गली जातियों तथा हरिजनों में काम करने वाले ईसाई मिशनों की प्रगतियाँ और हथकंडे अनुचित हैं, धर्म्म-प्रचार की मर्यादाके विरुद्ध हैं ईसा तथा ईसाई मिशन का अपमान है और भारतीय आतिथ्य का दुरुपयोग है। उनकी इन प्रगतियों का न केवल समझदार ग़ैर ईसाई ही वरन् सच्चे ईसाई भी समर्थन नहीं कर सकते हैं।

विहारमें विशेषतः छोटा नागपुरकी जङ्गली जातियां तथा हरिजनोंमें काम करने वाले ईसाई मिशनोंको जहाँ प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूपसे सरकारी प्रोत्साहन मिलता है, वहां ईसाई मिशनरियों को प्रचार की खुली छुट्टी प्राप्त है तथा आर्य्य-समाज का प्रचार असम्भव बनाया जाता है। इस शिकायत की सच्चाई विहार सरकार के गुप्त सरक्यूलर से जो जनता के दिमाग़ों में अभी ताज़ा है, तथा अनुभव से स्पष्ट हो गई थी। पं० जी के वक्तव्य से तो यह और भी ज्यादा स्पष्ट हो जाती है। पं० जी की यह शिकायत बिलकुल ठीक है कि पुलीस आर्य्य-समाज के प्रचारक के पीछे तो लगी रहती है, उसकी गतिविधि की जांच-पड़ताल रखती है और अशिक्षित लोगोंकी निगाहोंमें उसे नीचा प्रकट करती है और ईसाई मिशनरी इस प्रकार की देख रेख और जांच-पड़ताल से मुक्त रहता है। सरकार के इस पक्ष और बहुत सी अवस्थाओं में बहुत से सरकारी कर्मचारियों द्वारा धर्म्म-परिवर्तन के कार्य्य में ईसाई प्रचारक को दी जाने वाली सहायता का हम घोर विरोध करते हैं। हम यह नही कहते कि ईसाई मिशनों को प्रचार की इजाज़त न दी जाय। उन्हें इजाज़त दी जाय परन्तु वहीं तक जहाँ तक उनकी प्रचार प्रगतियाँ वांछनीय ढङ्ग लिए हुए हों।

❀ ❀ ❀

वीरता का अनुकरणीय उदाहरण—

वेगू सराय, ३ जुलाई।

ज़िला मजिस्ट्रेट ने पंसाला ग्राम के रामगुलाम सिंह की पत्नी श्रीमती देवकी को उसकी वीरता के उपलक्ष में २५) का इनाम दिया है।

मामला यह था कि संताखो नामक एक बदमाश ने जब वह अपने घर में सो रही थी उसकी चांदी की

हसली गले में से निकाल ली। इस पर वह जाग गई और उसने उस बदमाश को पकड़ लिया और बदमाश ने उसकी कमर पर एक हथियार के जो उसके पास था कई वार किए। तब उसने उस हथियार को छीनने की कोशिश की और उसका पैर पकड़ लिया। बदमाश ने तब उसके मुँह पर चाकू मारा इस पर भी उस स्त्री ने उसको नहीं छोड़ा। इस बीच में मौके पर गांव वाले आ गये और उन्होंने बदमाश को पकड़ लिया।

❀ ❀ ❀

प्रशंसनीय सेवा—

श्री कैप्टेन रामचन्द्र जी प्रसिद्ध आर्य-समाजी डाक्टर हैं। सिविल सर्जन के पद से अभी २--३ साल हुए वे रिटायर हुए हैं। मसूरी के 'दयानन्द मेडीकल मिशन' नामक संस्था के जिसके सन्बन्ध में समय समय पर इन स्तम्भों में प्रकाश पड़ता रहता है वे जन्मदाताओं में से हैं। पिछले वर्ष डाक्टर महोदय ने बिहार में 'मिशन' की एक शाखा खोली थी और वहां उन्हों ने काफी समय तक रहकर मुख्यतया आंखों का फ्री इलाज किया था। इस वर्ष वे पिछले मार्च में जन सेवा के पवित्र मिशन पर टिहरी गए थे और वहां लग भग १ मास पर्यन्त रह कर उन्हों ने सैकड़ों मरीज़ों को लाभ पहुँचाया था। उनके वहां के कार्य के सम्बन्ध में हमें एक बड़ी उत्साह बर्द्धक रिपोर्ट मिली है उस रिपोर्ट से उनकी अमूल्य सेवाओं का जो उन्होंने जन-साधारण की की है, अच्छा परिचय मिलता है। रिपोर्ट के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

"श्री० डा० रामचन्द्र जी टिहरी १३ मार्च ३६ को पधारे और ३ अप्रैल ३६ तक टिहरी के हस्पताल में कार्य करते रहे।

डाक्टर साहब के आते ही टिहरी में रोगियों का बड़ा समुदाय एकत्रित हो गया जिनमें अधिकांश आखों के रोगी थे। बहुत से अन्य रोगों से पीड़ित व्यक्ति डाक्टर साहब का नाम सुनकर आते रहे उनकी भी चिकित्सा होती रही। डाक्टर साहब ने राज्य के अन्य डाक्टरों की सहायता से जिनको सेवाएँ उनके निर्णय पर राज्य द्वारा रखदी गई थीं २१ दिन के भीतर २३३ आपरेशन किए जिनमें १२७ मोतियाबिंद के थे। इनके अतिरिक्त ६३ पलक बन्दी, २८ अन्य नेत्र रोगों के, ४ मसाने की पथरी, १ आंत उतरने और १० रसौली आदि के थे।"

डाक्टर साहब रोगियों के केवल आपरेशन ही नहीं करते थे किन्तु बड़े प्रेम के साथ उनकी सब प्रकार की देख भाल भी रखते थे, जिससे रोगी तथा अन्य लोग भी जो डाक्टर साहब के अनथक परिश्रम को देखते थे मुग्ध हो जाते थे। इसी के फल स्वरूप सब आपरेशन सफल हुए। उनके काम की टिहरी दरबार ने भी प्रशंसा की है। दरबार के चीफ़ सेक्रेटरी के प्रशंसा सूचक एक पत्र की लिपि इस प्रकारहै—

"दरबार को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आपने टिहरी में ३ सप्ताह निवास किया और इस बीच में २३३ सफल औपरेशन किए जिनमें १२७ मोतिया बिन्द (Cataract) के थे आपने इस राज्य में जिस सफलता के साथ धर्मार्थ काम किया

जिससे प्रजा को बहुत लाभ पहुंचा उसके लिए मैं आपको साधुवाद देता हूँ ।

❀ ❀ ❀

प्रशंसनीय कार्य्य—

ग्वालियर राज्य ने विधवा विवाह को कानूनन वैध ठहरा कर एक प्रशंसनीय कार्य किया है और समाज सेवा की दिशा में सुन्दर योग दिया है । इस कानून के अनुसार विधवा विवाह जायज़ समझा जायगा और पुनर्विवाह से होने वाली सन्तान को वे ही अधिकार प्राप्त होंगे जो और सब सन्तानों को प्राप्त हैं । अब किसी विधवा स्त्री वा विधवा के साथ विवाह करने वाले पुरुष को पुनर्विवाह की वजह से बहिष्कृत न किया जायगा । कानून भंग करने वालों को ५००) तक जुर्माने की सज़ा होगी ।

❀ ❀ ❀

देवदासी प्रथा—

देवदासी प्रथा हिन्दू समाज की भयंकरतम दूषित प्रथाओंमें से है। यह प्रथा मूर्ख और अन्ध विश्वासी माता पिताओं इत्यादि के अपनी सुकुमारी पुत्रियों को देवता की सेवा के लिए देव-मन्दिरों को अर्पित करने की प्रथा है । उन्हें आजन्म अविवाहित रहना पड़ता है। उनका काम देव मूर्तियों के सामने तथा अन्यत्र परिवारों इत्यादि में नाचना-गाना तथा पुजारियों इत्यादि की पाशविक इच्छाओं को सन्तुष्ट करना होता है । वे व्यभिचार का जीवन बिताने के लिए बाधित होतीं और रहती हैं ।

यह प्रथा प्रायः दक्षिण में पाई जाती है । इसने नारी समाज का बड़ा अहित किया है तथा भारत को अपने अभिशापों के साथ इस प्रकार की अन्य भयङ्कर प्रथाओं के साथ बहुत बदनाम किया है । समाज के मस्तकसे इस प्रथाका जितनी जल्दी अन्त हो उतना ही अच्छा है, प्रसन्नता है इस बात को लोग अब समझने लग गये हैं और इसके लिए यत्न भी हो रहा है । समाज सुधारकों द्वारा सफल प्रचार हो रहा है, इस प्रथा के विरुद्ध लोकमत जागृत किया जा रहा है तथा क़ानून बनाए जा रहे हैं ।

समाचार मिला है कि कोचीन राज्य ने अभी हाल में इस प्रथा के विरुद्ध एक कानून बनाया है और इस प्रकार राज्य पर लगे हुए इस प्रथा के डरावने दाग़ को धोने की दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है । क्या हम आशा करें कि कोचीन राज्य शीघ्र से शीघ्र अपने उस दाग को धो देगा तथा अन्य सरकारें जहाँ यह प्रथा व्याप्त है इस दिशा में अपने कर्तव्य का पालन करेंगी और इस प्रथा के समूलोच्छेद में बहुमूल्य योग देंगी ।

❀ ❀ ❀

ईसाइयों में छूत-छात—

दक्षिण भारत की नीची जातियों के ईसाइयों ने रोम के पोप को एक मेमोरियल भेजा है कि ऊंची जाति के ईसाई उनके साथ बड़ा दुर्व्यवहार करते हैं यहाँ तक कि उन्हें गिरजों में भी प्रवेश की आज्ञा नहीं है ।

❀ ❀ ❀

साहस पूर्ण मार्ग-प्रदर्शन—

मस्जिदों के सामने बाजे की समस्या ने जो रूप

इस समय धारण किया हुआ है उसकी लगभग १०० वर्ष पूर्व कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। आज यह अवस्था देख पड़ती है कि किसी को हिन्दू जलूस पर आपत्ति करने भर की ज़रूरत होती है और अधिकारी तत्काल जलूस के रास्ते और समय पर पाबन्दी लगाकर आर्डर जारी कर देते हैं। सदैव यह ज़रूरी भी नहीं देख पड़ता है कि किसी की ओर से उज्र उठाया जाय। क्योंकि अभी हाल में ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं जब शान्ति भंग के नाम पर स्थानीय अधिकारियों ने अपने प्रथानुमोदित ढंग से जलूस निकालने के धार्मिक त्यौहारों के मनाने के हिन्दुओं के अधिकारों पर भयंकर पाबन्दियाँ लगाईं और इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत-सी अवस्थाओं में त्यौहार मनाये जाने कतई बन्द हो गए हैं। इसलिए हम बिहार सरकार के शिक्षा सचिव श्री सय्यद अब्दुलअजीज़साहबके कतिपय आवश्यक विचारों की ओर जो उन्होंने लोहरदगा में एक मस्जिद में भाषण के दौरान में अभी हाल में प्रगट किए हैं विशेष रूप से ध्यान आकर्षित कर देना चाहते हैं।

उन्होंने बतलाया कि धर्म या तर्क दोनों में से कोई भी किसी जाति के सदस्यों को दूसरी जाति के सदस्यों के धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान में हस्ताक्षेप करने की आज्ञा नही देता है। उन्होंने मुसलमानी शास्त्रों के प्रामाणिक उद्धरण भी यह दिखलाने के लिए पेश किए कि इस्लाम पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता का आदेश देता है और इसलिए उन्होंने अपने मुसलमान भाइयों को समझाया कि वे मस्जिद के सामने किसी भी प्रकार के धार्मिक जलूस के निकलने पर आपत्ति न करें। अपने एक प्रभावशाली मुसलमान भाई की अपील तथा सच्चे मुस्लिम असूलों की स्पष्ट व्याख्या का स्थानीय मुसलमानों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा जिन्हों ने हिन्दुओं के जलूसों पर भले ही वे किसी समय, किसी रास्ते से और वर्ष के किसी भी दिन क्यों न निकलें, हस्ताक्षेप न करने का फैसला कर दिया। यह ऐसे स्थान पर हुआ जहाँ मस्जिद के सामने बाजे के जटिल प्रश्न पर दंगे की पूर्ण आशंका थी। क्या हम आशा करें कि अन्य मुसलमान नेता देश के दूसरे भागों के अपने भाइयों को इसी प्रकार का साहस पूर्ण मार्ग-प्रदर्शन करेंगे और इस प्रकार दो बड़ी जातियों के मध्य झगड़े के एक बड़े कारण को दूर करेंगे।

❀ ❀ ❀

सभ्यता का प्रसार—

एक जर्मन समाचार पत्र के अनुसार इटली के कुछ लेखक इटली के पुरुषों के साथ अबीसीनिया की स्त्रियों के विवाहों का प्रचार कर रहे हैं जिस से नए साम्राज्य के लिए दोगले पैदा हो सकें। हमने पढ़ा कि अबीसीनियाकी नंगी सुन्दर स्त्रियोंकी तसवीरोंका रोमकी सड़कों में प्रदर्शन किया जाता है। शायद इटली की सभ्यता की अबीसीनिया में जड़ जमाने का यही सर्वोत्तम उपाय सोचा गया है। एक लेखक नस्लों के इस सम्मिश्रण में बड़ा ख़तरा देखता है और उसे डर है कि फ़ासिस्ट साम्राज्य काले और गोरों का साम्राज्य हो जायगा।

उसकी सम्मति है कि आर्य्यजातियों में अपनी काली माताओं के गुण होंगे और गोरे पिता का एक भी बहुमूल्य गुण न होगा। ऐसा कैसे हो सकता है? अबीसिनिया की माताएँ बड़े बहादुर पुत्र पैदा करती हैं? मुसोलिनी को चाहिए कि वह वंश परम्परा के

प्रसिद्ध विद्यार्थियों से सलाह करें।

* * *

आर्य्य-सेवा दल—

पाठक अन्यत्र आर्य्य रक्षा समिति के सहायक मंत्री श्री म० शिवचन्द्र जी के आर्य्य सेवादल के संगठन सम्बन्धित आर्य्य समाजों में भ्रमण की रिपोर्ट पढ़ेंगे। उससे उन्हें विदित्त होगा कि ग़ाज़ियाबाद, लालकुरती मेरठ इत्यादि समाजों में सेवादल संगठित हो गए हैं तथा कुछ समाजों में संगठन के लिय क्षेत्र-तय्यार हो गया है। यह रिपोर्ट उतनी उत्साह वर्द्धक नहीं है जितनी होनी चाहिए थी, इसलिए नहीं कि कार्यकर्ता के कार्य्य में कोई त्रुटि है वरन् इसलिए कि आर्य्य समाजें इस सम्बन्ध में अपेक्षित दिलचस्पी लेती प्रतीत नहीं होती हैं। जिन समाजों ने दलों को संगठित किया है वे बधाई के पात्र हैं। हम उन्हें कहेंगे कि दल के केवल संगठन मात्र से ही उनके कर्त्तव्य की पूर्ति नहीं हो जाती है। उनके कर्तव्य की पूर्ति दल के सफल संचालन में ही समझी जायगी। इस बात पर उन्हें विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिन समाजों में उसके संगठनके लिए भूमि तय्यार हो गई है उन्हें सभा के कार्य्य-कर्ता के योग और प्रेरणा के बिना ही अविलम्ब दल स्थापित कर देने चाहिएँ। सभाके कार्य-कर्ताके योग और प्रेरणा से दल का स्थापित होना ज्यादा शोभा जनक न होगा। जिन समाजों ने अभीतक इस सम्बन्ध में करवट नहीं बदली है उनपर हमारी उपयुक्त शिकायत अधिकांश में लागू होती है। हो सकता है कि उन समाजों के इस सम्बन्ध में अकर्मण्य होने का कारण उनकी शिथिलता हो या अन्य कोई बाधा हो। कारण कोई भी क्यों न हो, उन्हें उसे दूर करते हुए दल को अविलम्ब संगठित तथा शिकायत को दूर कर देना चाहिए। यदि यह शिकायत दूर न हुई तो हम कहेंगे कि आर्य्य जनता की यह शिकायत कि ज़िम्मेवार सभा सोसायटियों से रचनात्मक कार्य्य के सम्बन्ध में प्रेरणा नहीं मिलती है, निस्सार है एवं वे स्वयं कुछ न कर धर के अपनी अकर्मण्यता को दूसरों के ऊपर डालने का व्यर्थ प्रयास करती है।
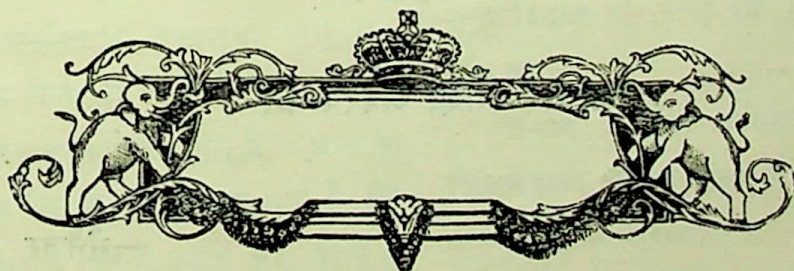
उपवास और मौन

[ले०—श्री महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज]
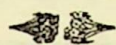
आज उपवास भोजन न करने और मौन चुप रहने का नाम प्रसिद्ध है और अनेक स्त्री पुरुष अपने लिये कल्याणदायक समझते हैं कि वे भूखे और चुप रहा करें। उपवास उतना प्रचलित नहीं जितना मौन—कारण स्पष्ट है कि मौन (चुप) रहने में उतना कष्ट नहीं होता जितना भूखा रहने में। परन्तु चाहे उपवास हो और चाहे मौन आज केवल उनकी लकीर पीटी जाती है। असली तत्व जो इन क्रियाओं के भीतर था प्रायः गायब होचुका है। किस प्रकार उपवास,भूखे रहने, और मौन, न बोलने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है यह बात भी इन क्रियाओंका तत्व समझ लेनेसे प्रकट हो जावेगी:—

उपवास—शतपथ ब्राह्मण के प्रारम्भ में एक जगह कहा गया है:—

तेऽस्य विश्वेदेवा गृहानागच्छन्ति।

तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः ॥१।१।१।७

अर्थात जिस दिन गृहस्थ कोई यज्ञ विशेष करता या किसी व्रत या इष्टिके प्रयोग में लाने का दिन होता तो उस दिन के लिए कहा गया है कि (विश्वेदेवाः) अनेक विद्वान उसके घर आते हैं और आकर उसके घर पर बसते हैं यही उपवास है। उप नाम समीपका है और वास बसने या रहने को कहते हैं। विद्वान जो गृहस्थ के घर में आकर रहते हैं इसी को उपवास कहते हैं। उपवास के अर्थ भूखा रहना क्यों हुआ इसके लिये इसी ब्राह्मण के आठवें खण्डको देखें जो इस प्रकार है:—

तन्नत्वेवानवक्लृप्तमेव। यो मनुष्येष्वनश्नत्सु पूर्वोऽश्नीयादथ किम यो देवेष्वनश्नत्सु पूर्वोऽश्नीयात्त स्मादुनैवाऽश्नीयात् ॥१।१।१।८

अर्थात् यह अनुचित है कि कोई मनुष्य घर में आवे तो बिना उसके खिलाये घर वाला भोजन करले और फिर जब विद्वान आवें तो यह कैसे हो सकता है कि उनके खिलाये बिना गृहस्थ भोजन कर ले इसलिये उस गृहस्थ को पहले भोजन नहीं करना चाहिए।

अब इन दोनों वाक्यों पर विचार कर लेवें कि विद्वानों का घर आकर रहना उप (समीप) वास और उनकी सेवा सुश्रुषा के कारण गृहस्थ का भोजन न करना—इस प्रकार उपवास कारण भोजन न करने का हुआ—होते होते उपवास के अर्थ ही भोजन न करने के होगये। विद्वानों को बुला कर उनकी सेवा शुश्रुषा तो जाती रही भूखा रहना बाक़ी रह गया।

मौन—याज्ञवल्क्य ने कौषीतकेय कहोल नाम वाले विद्वान को उत्तर देते हुए उत्तर के अंत में कहा था:—

तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद्बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च निर्विद्याऽथ ब्राह्मणः।

(बृह० उप० ३।५।१)

अर्थात्—इसलिये ब्राह्मण पाण्डित्य=शास्त्र ज्ञान को पूर्णतया प्राप्त करके बल के ऊपर ठहरने की इच्छा करे। इसप्रकार ज्ञान उपलब्ध और बल

सत्यार्थ-प्रकाश लेखमाला—

विवाह-मर्यादा

[लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज]

विवाह प्रत्येक देश और वर्णमें होता है। विवाह सर्व तंत्र सिद्धाँत सा है। इसमें रीति नीति प्रायः भिन्न २ हैं। विवाह किसी रीति वा पद्धति से हो मुझे इसपर कोई विचार नहीं करना है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है विवाह वंशकी दृष्टिसे समीप हो वा दूर हो, इस विषय में जो वेद को नहीं मानते हैं वह क्या कहते हैं इस पर भी इस लेख में विचार न होगा। इस लेख में वैदिकधर्मियों के व्यवहार और स्मृति ग्रंथों को आधार करके विचार किया जायगा। क्योंकि इस समय भारतवर्ष में

प्राप्त करके तब वह मुनि (मननशील) होवे तब मौन (मुनेर्भावो मौनम्) अर्थात् मनन वृत्ति और अमौन=क्रियाशक्ति को प्राप्त करने से वह (सच्चा) ब्राह्मण होता है। उपनिषद् के इस वाक्य से स्पष्ट है कि मौन मनन वृत्ति को कहते हैं और यह भी स्पष्ट ही है कि जब वह मनन करेगा तब चुप भी रहेगा। इस प्रकार मनन वृत्ति को गायब करके लोगों ने मौन के अर्थ चुप रहना बना रक्खे हैं। बिना जप और मनन के चुप रहना निरर्थक है और इस प्रकार का चुप रहना कि इशारों से या लिख लिख कर बात करना यह तो सर्वथा ढोंग ही है।

वंश दूरी के सम्बन्ध में एक व्यवहार नहीं है और स्मृतियों में भी एक ही प्रकार का विधान नहीं है उनका उल्लेख करके इन सब के आधार पर जो मेरी सम्मति है अन्त में मैं वह भी लिख दूंगा।

इस लेखमें गोत्र प्रवर (आर्ष गोत्र) का स्मृतिग्रंथों में पाठ मिलता है इसलिए प्रथम उनका लिख देना उचित होगा ताकि पाठकों को समझने में कठिनाई न हो। इस विषय में सब से विस्तृत लिखने वाली पुस्तक गोत्र प्रवर-निबन्ध-कदम्ब है। यदि कोई विशेष देखना चाहे तो उसे देखे। फिर निर्णयसिन्धु और धर्मसिन्धु में भी लिखा गया है. पाठक चाहें तो वहाँ ही देखलें।

गोत्र ८ हैं और प्रवर ४९ हैं। फिर इनके अनेक भेद हैं। उन भेदों का इस लेख में लिखना असंभव है अतः उन्हें छोड़कर सामान्य ही लिखा जायगा। 'जमदग्निभरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगौतमाः। वसिष्ठ काश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः॥ स्मृतितत्व, उद्वाहतत्व। यही नाम निर्णयसिन्धु में लिखे हैं। यथा विश्वा मित्र। जमदग्निः। भरद्वाजः। गौतम। अत्रिः। वसिष्ठ। कश्यप। अगस्त्यः। यह ८ गोत्र और ४९ प्रवर हैं। ऊनपंचाशदेवैषां प्रवरा ऋषि दर्शनात्। उनके कुछ भेद धर्मसिन्धु में हैं। सप्त भृगवः। सप्तदशांगिरसः। चत्वारोऽत्रयः। दश विश्वामित्राः। त्रयः कश्यपाः। चत्वारो वसिष्ठाः।

चत्वारोऽगस्त्याः । इनके आगे नाम भी दिये हैं और उनके जो आगे भेद हैं उनपर भी कुछ विचार किया है । प्रवर और आर्ष गोत्र पर्याय हैं यह बात मनु पर टीका लिखते समय मेधातिथि लिखते हैं "आर्ष प्रवर इत्येकोऽर्थः ।" यही विद्वान विवाह प्रकरण में एक और बात लिखता है "अन्येतु गोत्र वंशमाहुः । । तत्रावध्यपेक्षा यावदेतज्ज्ञायते वयमेकवंशा इति तावदविवाहः ।" इसका भाव यह है कई विवाह में गोत्र वंश को ही मानते हैं उनका कथन है इसमें अवधि की कोई अपेक्षा नहीं है अर्थात् सात वा पांच पीढ़ी की भी अपेक्षा नहीं है जहाँ तक ज्ञात हो अमुक हमारे वंश का है वहां तक विवाह न करें । जहां ऐसा ज्ञान न हो वहां विवाह कर लेना चाहिए। इसी टीकाकार ने यह भी लिखा है यदि गोत्र की बिस्मृति हो जाय तो सात पीढ़ी छोड़ कर विवाह करलेना चाहिए। मेधातिथिने ऐसा भी लिखा है—एक गोत्रमें विवाह हो सकता है परन्तु एक प्रवरमें नहीं होना चाहिए।

इसी श्लोक की टीका में सर्वज्ञनारायण जी लिखते हैं "जन्मनाम्नोरविज्ञानादु-द्वहेदविशं-कितः" इत्यभिधानात् व्यास" अर्थात् संबन्ध हो सकता है जबकि जन्म नामादि का ज्ञान न हो। जैसा कि मेधातिथिजी ने लिखा था 'जब तक ज्ञान हो हम एक वंश के है विवाह न करे फिर करले' वैसा ही यह है ।

गोत्र प्रवर पर कुछ थोड़ा सा लिखकर अब मैं स्मृतियों के पाठ लिखता हूँ और सामान्य से उनके अर्थ लिखे जायेंगे पश्चात उनपर विचार होगा ।

(१) उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।४।
असपिण्डा च यामातुरसगोत्रा च या पितुः ।५।
मनु अध्याय ३ ।

द्विज सवर्ण, लक्षणान्वित भार्या विवाहे । वह माता की असपिण्डा और पिता की असगोत्रा हो। इस पर कई टीकाकारों ने असपिण्डा के साथ जो च है उसके अर्थ असगोत्रा और असगोत्रा के साथ जो च है उसके अर्थ असपिण्डा किये हैं। अर्थात् माता की असपिण्डा और असगोत्रा तथा पिता की असगोत्रा और असपिण्डा हो। सपिण्ड छः पीढ़ी तक होता है पश्चात असपिण्ड वा समा-नोदक कहते हैं । यथा । "सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते" अर्थात् सपिण्डता सातवीं पीढ़ी में हट जाती है और सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि का लेख है जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ी में न हो। निर्णयसिन्धु में एक पाठ है। अविभक्तधनास्त्वेते सपिण्डाः परिकीर्तिताः । जब तक धन विभाग न किया जाय तब तक ही सपिण्डता होती है ।

(२) अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
अनन्यपूर्विकां कांतामसपिण्डां यवीयसीम् ।५२
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ।
पंचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।५३।
याज्ञवल्क्य (आचारा०)

अखंडित ब्रह्मचर्य वाला पुरुष, सुन्दर लक्षण युक्त, जिसका विवाह पूर्व किसी से न हुआ हो, असपिण्डा, शुभ, अपने से छोटी आयु वाली, रोगरहित, भ्राता वाली, जो अपने प्रवर की न हो ऐसी स्त्री से विवाह करे ।

अन्त में लिखा है जो माता की पांच और

पिता की सात पीढ़ी में न हो

इससे प्रतीत होता है याज्ञवल्क्य जी सपिण्डता पांच तक ही मानते थे। इस श्लोकमें पिताकी सात पीढ़ी और प्रवरकी न हो यह दो बात हैं। मिताक्षरा टीकाकार को यह बात खटकी उसने इसका समाधान किया है सात और पाच पीढ़ी शूद्र के लिए हैं और 'असपिण्डाम् तथा असमानार्षगोत्रजाम्' द्विज के लिए है। क्योंकि शूद्र को गोत्र प्राप्त नहीं है। वहां यह भी लिखा है कि गोत्र क्षत्रिय और वैश्य को भी प्राप्त नहीं है उसका समाधान किया है इनको पुरोहित गोत्र प्राप्त होता है। पाठक इस बात का ध्यान रक्खें

(३) सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम्।

व्यास। २। २

जो कन्या सवर्ण हो और माता, पिता के गोत्र और प्रवर की न हो।

(४) असमानप्रवरैः विवाहः। १। ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः पञ्चमात्।२॥ गोतम धर्मसूत्र प्र० २ अ० ४

जो अपने प्रवर का न हो उससे विवाह करे पिता की सात और माता की पांच पीढ़ी में न हो। 'बीजिनश्च' के अर्थ नियुक्त पति की सात पीढ़ी में न हो।

(५) विन्देत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम्।
मातृतः पञ्चमीं चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम्।

शंख ४। १॥

इसकी टीका भाषा में है मैं उसी को लिखना उचित समझता हूँ। जो अपने गोत्र और प्रवर की न हो ऐसी स्त्री को वेदोक्त विधि से विवाहे। अथवा जो अपनी माता के कुल में पांचवी पीढ़ी की हो और पिता के कुल में सातवीं पीढ़ी की हो उसे विवाहे।

(६) असमानार्षगोत्रांहि कन्यां भ्रातृकां शुभाम्।

हारीत ४। १।

जिसके प्रवर और गोत्र अपने से भिन्न हों और कोई भाई जिसका हो।

(७) असमानार्षेयीं कन्यां वरयेत्। पञ्च मातृतः परिहरेत। सप्त पितृतः। त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतो वा। स्मृतितत्व, पैठीनसी।

जो अपने प्रवर की न हो उससे विवाह करे। पांच माता से और सात पिता से जो कन्या हो उससे विवाह करे अथवा माता से तीन पीढ़ी और पिता से पांच पीढ़ी हो।

यही तीन और पांच वाला पाठ याज्ञवल्क्य टीका में पैठीनसी के नाम से लिखा गया है।

(८) आसप्तमात्पंचमाच्च बंधुभ्यः पितृमातृतः।
अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा।

स्मृतितत्व (नारद)

जो कन्या अपने गोत्र और प्रवर की हो वह विवाह के योग्य नहीं है, जो सात और पांच पीढ़ी पिता माता से हो वह भी न विवाही जाय।

(९) ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो मातृबन्धुभ्यः पञ्चमात्।

गोतम। ४। २॥

(१०) पंचमीं मातृबंधुभ्यः सप्तमीं पितृबंधुभ्यः।

वशिष्ठ ८। २॥

माता से पांचवी और पिता से सातवीं से विवाह करे।

(११) पञ्चमीं मातपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम्।

गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्यायेन विधिना नृप ।

वि० पुराण निर्णय सिंधु ।

माता से पांचवी और पितृ पक्ष से सातवीं के सात विवाह कर ले ।

(१२) सप्तमीं च तथा षष्ठीं पञ्चमीं च तथैव च ।

एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः ।

निर्णयसिंधु ।

सातवीं, षष्ठी तथा पांचवी से विवाह में शाकटायन दोष नहीं मानता है ।

(१३) उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावेतु सप्तमीम् ।

पञ्चमीं तदभावेतु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः ॥

निर्णयसिन्धु ।

सात पीढी से आगे विवाह करे यदि ऐसी न मिले तो सातवीं से कर ले, यदि ऐसी न प्राप्त हो तो पाँचवीं पीढी में कर ले इसी प्रकार पिता पक्ष में विचार कर लेवे ।

(१४) पञ्चमात्सप्तमाच्चार्वागपि त्रिगोत्रांतरितः विवाहः

असम्बद्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा ।

साविवाह्या द्विजातीनां त्रिगोत्रांतरिता च या ।

सम्बन्ध विवेक ।

पांचवीं और सातवीं से पहले भी विवाह हो हो सकता है । तीन गोत्र से आगे माता के पिण्ड में निषेध है उदक में नहीं । द्विज को तीन गोत्र के भीतर विवाह न करना चाहिए यहाँ तीन गोत्र तीन वंश ही है ।

(१५) मातुः सपिण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः ।

व्यास (स्मृतितत्व)

द्विजों को माता की सपिण्डा से विवाह न करना चाहिए ।

(१६) अतो द्विजः समावृत्त सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत ।

कुले महति संभूतां लक्षणैस्तु समन्विताम् ।

सवर्त २३ ।

द्विज समावर्तन के पश्चात सवर्णा अच्छे लक्षण वाली और बड़े कुल में उत्पन्न स्त्री से विवाह करे ।

(१७) कुले महति संभूतां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।

विष्णु २६ ।

बड़े कुल में उत्पन्न, सवर्णा, सुन्दर लक्षण वाली कन्यासे विवाह करे । इनके अतिरिक्त निर्णय सिन्धु और धर्म्म सिन्धु में मातुल कन्या पर भी विचार किया है क्योंकि दक्षिण में मातुल कन्या से विवाह की प्रथा है वहाँ इस समय भी होता है और कहीं कहीं तो भग्नी कन्या से विवाह होता है इसलिए मैं एक श्लोक और लिखता हूं जो इसी बात की सिद्धि में है ।

(१८) यस्तु देशानुरुपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत् ।

नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते ।

निर्णयसिन्धु ।

जो देश और कुल का आचार है उनके अनुसार यदि कोई विवाह करे तो वह व्यवहार्य ही है अर्थात् उसका बिरादरी से पृथक नहीं करना चाहिए ।

अब प्रमाणों की समाप्ति पर इनको समीक्षा की जाती है ।

समीक्षा—

ऊपर लिखित पाठों में मनु, याज्ञवल्क्य, व्यास, गोतम-धर्मसूत्र, शंख, हारित, पैठीनसी, नारद इनमें गोत्र में विवाह का निषेध है इनमें से भी

मनु ने तो गोत्र का निषेध असगोत्रा शब्दसे किया है, अन्य स्मृतिकारों ने आर्ष गोत्र वा प्रवर शब्द से किया है। आर्ष गोत्र वा प्रवर एक ही है यथा 'आर्ष प्रवर इत्येकोऽर्थः' से सिद्ध है और एक गोत्र में कई प्रवर होते हैं यह मैंने इस लेख के आरम्भमें ही लिख दिया है इसलिये गोत्र निषेधसे प्रवर निषेध स्वतः प्राप्त है परन्तु ८ जो मुख्य गोत्र हैं उनकी ओर केवल मनु ने ध्यान दिया शेष स्मृतिकार उसे छोड़कर प्रवर को ही लिखना उचित समझते हैं इससे प्रतीत होता है उन स्मृतियों के समय में एक गोत्र में विवाह हो सकता था वा होता था परन्तु प्रवर में न होता था। इस समय उन आठ गोत्रों के विस्मृति वाले पर्याप्त हैं इसलिए उनकी कोई व्यवस्था करनी होगी।

दूसरे ऊपरलिखित पाठों में याज्ञवल्क्य, गोतम धर्मसूत्र,शंख,पैठीनसी इन चारमें जहां प्रवरका निषेध किया है वहाँ सातवीं, पांचवीं पीढी का उल्लेख भी साथ ही किया है इसलिए इनका लिखना विशेष चिंतनीय है। यह पक्ष मिताक्षरा के लेखकने उठाया भी है परन्तु उसका समाधान न्यून से न्यून मुझे तो संतुष्ट नहीं करता है। वह लिखता है 'वंश का पाठ शूद्र के लिए है और गोत्र का पाठ द्विजों के लिये है।' गोत्र विशेषरूप से ब्राह्मणों का ही होता है। गोत्रप्रवरनिबंधकदम्ब में यह बात विस्तार से मिलती है वह क्षत्रिय और वैश्यको अपना गोत्र न मानकर पुरोहित के गोत्र मानने का विधान करता है यदि इसे मान लिया जाय तो वर्तमान समय में पुरोहित के परिवर्तन से यजमान के गोत्र में परिवर्तन होगा। उस अवस्था में क्या यजमान के पुत्र का विवाह अपने पहले गोत्र में हो सकेगा यदि ऐसा माने तो दृढ़ गोत्रवादियों की क्या व्यवस्था होगी। सत्यार्थप्रकाश में ऋषि ने वंश समीप के विवाह का निषेध किया है और आर्यों में प्रायः समीप वंश में विवाह वर्जित माना जाता है इससे प्रतीत होता है यह स्मृतिकार गोत्र वा प्रवर वंश के अर्थों में ही मानते थे जैसा कि मेधातिथि ने लिखा है 'अन्ये तु गोत्रं वंशमाहुः।' कई गोत्र वंश को ही कहते हैं। यदि ऐसा न होता तो यह प्रवर के साथ २ वंश का उल्लेख क्यों करते। पुनः प्रश्न होगाकि इन्होंने प्रवर क्यों लिखा वंश ही लिखा हुआ पर्याप्त था। मैं यही मानता हूं, वंशका विचार ही करना चाहिए। यदि कोई एक ही स्थान में रहते हों वहाँ प्रवर का विचार करते क्योंकि वहाँ पीढी दूर होने पर भी समीप अर्थात एक ग्राम में वास होने से समीप का व्यवहार होता है अतः वहाँ प्रवर छोड़ दे अन्यथा पिता की सात और माता की पाँच पीढ़ी छोड़कर विवाह कर लेना चाहिए यह इन स्मृतिकारों का मत प्रतीत होता है।

इसके आगे गोतम, वशिष्ठ, विष्णुपुराण (निर्णय सिंधु) पिता की सात पीढ़ी और माता की पांच पीढी छोड़ कर विवाह करने की आज्ञा देते हैं और शाकटायन (नि० सि०) संख्या १३ निर्णय सिन्धु पैठीनसी। सात पांच से समीप पीढी में भी विवाह मानता है और संवत तथा विष्णु वंश का भी उल्लेख कहते हैं वह उत्तम वंश और सुंदर कन्या ही लिखते हैं। इन स्मृतियोंको छोड़कर यदि वर्तमान समय के व्यवहार को देखा जाय तो पञ्जाब में गोत्र को कोई पूछता ही नहीं है वहाँ कुछ उप

जाति वा उपगोत्र प्रचलित हैं उनका विचार करके विवाह होते हैं, उदाहरण के लिए क्षत्रियों में खन्ना, कपूर प्रसिद्ध हैं इनके विषय में दन्तकथा यह है— यह दोनों भ्राता थे। कपूरचन्द की संतान कपूर हो हो गई और खान (कान्ह) चन्द को खन्ना होगई अब यही गोत्र के नाम से पुकारे जाते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणोंमें पाठक शारदा हैं। यह मुख्य गोत्र नही हैं, ऐसे ही वैश्यों में मित्थल, वासलहैंयह सब इनको छोड़ते हैं इसके अतिरिक्त आज कल ईसाई वा मुसलमान आर्य होजाते हैं जैसे म० धर्मवीर जी प्रथम सय्यद थे उनके पुत्र पुत्री के विवाह समय किस गोत्र का विचार किया जाय। ऐसे ही दक्षिण में मातुल कन्या और भगिनी कन्या से भी विवाह हो जाता है इनके समाधान के लिये तो स्मृतिकारों ने—'यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत्।

नित्यं स व्यवहार्यः स्यात्। लिख दिया इस लिये जबकि गोत्र किसी २ को स्मरण है अधिक विस्मृति वाले ही हैं तब मेधातिथि के लेख को मानकर सात और पांच पीढो का विचार करके विवाह करना होगा और सर्व स्मृतियों को ध्यान से देखें तो प्रतीत भी यही होता है। वह पीढी पर बल देते हैं और चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से भी रुधिर का सम्बन्ध यहाँ तक ही है आगे कुछ नहीं है, और सत्यार्थप्रकाश में ऋषि ने लिखा भी है—

"जैसे पानीमें पानी मिलानेसे विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृ कुल में विवाह होने में धातुओं के अदल बदल न होने से उन्नति नहीं होती। जहाँ ऋषि ने गोत्र के साथ २ पितृ वा मातृ कुल भी लिखा है अतः कुल का विचार मुख्य है और गोत्र का गौण है अथवा गोत्र भी कुल वाचक इस प्रकरण में है।"

* * *

शिक्षा जिसकी वर्तमान में भारतवर्ष को आवश्यकता है

(लेखक—एक अनुभवी पत्रकार)

कहा जाता है कि शिक्षा बीसवीं शताब्दी का सिगनल है। शिक्षा की पुकार हर जगह है । और समस्त राष्ट्रों ने अपने २ देशों में निरक्षरताके निवारण और ज्ञान के प्रसार के लिए शिक्षा कार्य्य न्यूनाधिक रूप में ठीक ठीक रीति से प्रारम्भ किया हुआ है । वर्तमान शिक्षा आन्दोलनों में शिक्षा के सिद्धान्त और अमल में लाने के उनके उपाय बहुत से हैं और भिन्न भिन्न हैं। उनकी दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को जीवन के लिए तय्यार करना और जीवन के व्यापार को उत्तम रीति से सम्पादन करने के योग्य उसे बना देना है । उत्तमता वा जीवन की तय्यारी का अर्थ लगभग ६० प्रतिशतक लोग किसी को आजीविका कमाने के मार्ग पर डाल देना समझते हैं । आजीविका कमाना विस्तृत दृष्टिकोण के बजाय जो शिक्षा का सच्चा उद्देश्य होना चाहिए एक संकुचित और स्वार्थ पूर्ण दृष्टिकोण है । इस दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति को किसी व्यापार के योग्य बना देना है जिसके द्वारा वह जीवन में धन, पद और प्रभुता प्राप्त कर सके। इसलिए जब किसी व्यक्ति के शिक्षण का प्रश्न विचाराधीन होता है तो हम शिक्षा के मनुष्य बनाने वाले अङ्ग की उपेक्षा कर देते हैं । बहुत सी अवस्थाओं में इस बात पर कि मनुष्य से कम धन काल्पनिक पद और चलायमान प्रभुता की ही आशा की जा सकता है, अनुचित ध्यान दे दिया जाता है । व्यक्ति और समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से इस प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य हानिकारक है, यह उद्देश्य बड़ा अन्धा है और सांसारिक असफलता के विरुद्ध यह उद्देश्य कोई संरक्षण भी नहीं है । उस चिकने मार्गके विरुद्ध जिसपर मनुष्य को सत्य की अपनी यात्रा पर चलना होता है, संरक्षण की तो बात ही क्या है ? शिक्षा प्राप्त करना और जैसे तैसे अपने गुज़ारे का प्रबन्ध करना एक चीज़ है परन्तु यह देखना कि वह शिक्षा किस प्रकार जीवन की वास्तविक तय्यारी करा सकती है,कहीं ज्यादा महत्व पूर्ण चीज़ है । यदि कोई व्यक्ति किसी शिक्षा से विशेषताओं से दीक्षित नहीं होता है तो वह शिक्षा, शिक्षा कहे जाने योग्य नहीं है । वर्तमान शिक्षाप्रणाली की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इसने विशेषताओं में ऐसी गड़बड़ पैदा करदी है कि साधारण कोटि का शिक्षित व्यक्ति जीवन के मुख्य विषय में निर्णय की भयंकर भूलें कर बैठता है । श्रीयुत डा० जे० यच० स्नोडन (D. J H. Snodden) कहते हैं कि—

"अपने पैरों के नीचे की धूल को देखना और मोतियों से अलंकृत ऊपर के गुम्बद को न देखना, इस छोटे से संसार को देखना और किसी दूसरे संसार को न देखना निर्णय की सबसे बड़ी भूल है जो मानवी आत्मा कर सकती

है। शिक्षा बड़ी निराशाजनक असफलता है और यह अच्छा होता कि हम इसका कभी प्रकाश न पाते यदि यह हमें उन शाश्वत विशेषताओं के देखने और पसन्द करने में समर्थ नहीं बनाती है जो प्लेटों के शब्दों में शरीर और आत्माके समस्त सौन्दर्य और समस्त पूर्णता में जिनके वे योग्य हैं विकसित होती है।

वर्तमान शिक्षा ऐसा बहुत सा ज्ञान प्रदान कर देती है जिसकी मनुष्य को उसके भावी जीवन-क्षेत्र में जरूरत पड़ सकती है। स्त्री पुरुषों को शारीरिक और बौद्धिक गुणों के वैज्ञानिक विकाश के लिए यह शिक्षा अवसर भी प्रदान कर देती है। परन्तु नैतिक और आध्यात्मिक गुणों की प्राप्ति के लिए जो मनुष्य के सर्वतोमुखी विकाश के लिए अत्यावश्यक हैं, इस शिक्षा ने मनुष्य को समर्थ नहीं बनाया है। यही कारण है जिसकी वजह से वर्तमान स्त्री-पुरुषों के, जिन्होंने बग़ैर नैतिक और आध्यात्मिक दीक्षा के बौद्धिक शिक्षा प्राप्त की है, मस्तिष्क में बहुत सी अवस्थाओं में हम भयंकर मुर्दनी पाते हैं। वर्तमान शिक्षाप्रणाली में मानव जीवन की अत्यन्त आवश्यक समस्याओं की उपेक्षा की गई है।

लगभग एक मास हुआ, एक बंगाली सज्जन ने 'अमृत बाज़ार पत्रिका' में प्रकाशित एक पत्र में भारतीय विद्यार्थियों की ओर संकेत करते हुए कलकत्ता यूनिवर्सिटी के द्वारा एक विद्यार्थी-आन्दोलन चलाए जाने पर बल दिया था—

"ऐसा आन्दोलन जो भावना और क्रिया में देश के इतिहास में अभूतपूर्व हो। आदर्श की अवहेलना और उसके फलस्वरूप आत्मा के ह्रास और मस्तिष्क की गड़बड़ ने देश में पैर जमा दिए हैं।" वर्तमान शिक्षा ने अपने सम्पूर्ण चमकीले धरातल को लिए हुए भारत के शिक्षित स्त्री-पुरुषों में जो अवस्थाएँ पैदा कर दी हैं उन पर भारत के शुभचिन्तक दुखी हुए बग़ैर नहीं रह सकते हैं। वर्तमान अवस्थाएँ हमें यूनानी युग का स्मरण कराती हैं जब मिथ्या हेतुवादी लोगों Sophists के जीवन की कोई फ़िलासफ़ी न थी और वे अपने शिष्योंको शिक्षा दिया करते थे कि किस प्रकार वह योग्यता आ सकती है जिससे जीवन में प्रभुता और समृद्धि की प्राप्ति हो। सौफिस्ट लोग कानूनी युद्ध में बड़े पटु थे। वे इस कला को पैसा देनेवालों को सिखाया करते थे। उन्हें भी सिखाया करते थे जो अदालतों में प्रभाव क़ायम रखने के लिए सीखना चाहते थे। वाग् युद्ध का उनमें कौशल था। और सही या ग़लत किसी भी बात का वे खण्डन कर सकते थे। यह हद थी परिश्रमपूर्ण और अव्यवस्थित शिक्षण के द्वारा जिस तक पहुंचाने के लिए अपने शिष्यों को वे शिक्षा दिया करते थे। सुकरात मैदान में आये और उन्होंने न केवल बातों से वरन् अमल से आत्म-ज्ञान की विशेषता का उपदेश किया। ज्ञान-प्राप्ति और अच्छाई जीवन की उच्चतम योग्यता है, इस बात पर उन्होंने बल दिया। उन्होंने लोगों को शिक्षा दी कि बुद्धिमत्ता को तरजीह दो और व्यक्तित्व और चरित्र को बनाओ। आचार और विचार के ग़लत तरीक़ों के विरुद्ध उनका समस्त जीवन एक विद्रोह था।

इसके बाद प्लेटो ने घोषणा की कि जो चीज़ गुणों की अभिवृद्धि के लिए हितकर न हो उसे

शिक्षा में स्थान प्राप्त नहीं होने देना चाहिए। उनके मतानुसार उच्च शिक्षण का उद्देश्य आत्मा को ऐन्द्रियजगत के अध्ययन पूर्वक उसके वास्तविक अस्तित्व के मनन की ओर ले जाना है।"

भारतवर्ष ने अपने अतीत काल में अध्ययन और ज्ञान, ऐहिक और धार्मिक शिक्षा को इस लिए मिलाने का यत्न किया था जिससे पुरुष और स्त्रियां जीवन के परीक्षणों और मुसीबतोंके सहने, और उत्तम जीवन बनाने के लिए पूर्णतया तय्यार हो सकें। क्या वर्तमान भारतवर्ष शिक्षा के क्रियात्मक हल के लिए अपने प्राचीन इतिहास के पृष्ठों को नहीं खोल सकता है ?

प्राचीन भारत की शिक्षा का मुख्य असूल मनुष्य की आध्यात्मिक प्रवृत्ति की मान्यता पर आश्रित था। यद्यपि अध्ययनकी अपेक्षा अनुशासन बहुत महत्वशाली समझा जाता था, परन्तु यह असूल जीवन के ऐहिक पहलू की उपेक्षा नहीं करता था। शरीर के नियन्त्रण से बुद्धिके विकाश से आत्मा को अविद्यासे हटाकर विद्या की ओर अग्रसर करने से मानवी क्षमता के सर्वतोमुख विकास में शिक्षा सन्निहित थी। विद्यार्थियों को घर और खेत में काम करना, अपना भोजन बनाना, दान लाना और परिवार के पशुओं का पालन करना होता था।

उन्हें सफ़ाई, पवित्रता और उत्तम आचार-व्यवहार के नियमों का पालन और दैनिक उपासना करनी होती थी। उन्हें न केवल अपने व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए वरन् देश में स्वास्थ्य कर वातावरण पैदा करने के लिए स्वास्थ्य के नियमों का भी पालन करना होता था। समाज के हित के लिए उन्हें कतिपय सामाजिक नियमों का भी पालन करना होता था। अपनी शक्ति को शारीरिक और मानसिक कार्य्यों, आध्यात्मिक व्यायाम और गुरुजनों की व्यक्तिगत सेवा में प्रेरित कर देने से युवावस्था के बढ़ते हुए विकारों से मुक्त होने की उन्हें शिक्षा दी जाती थी। इन्द्रियों के विषयों से किस प्रकार ध्यान हटाया और मस्तिष्क पर काबू रक्खा जाता है यह भी सिखाया जाता था।

यह कल्पना करना गलत है कि प्राचीन काल में अध्यापक लोग केवल वेदों का ज्ञान प्रदान किया करते थे और दूसरी विद्याओं की उपेक्षा किया करते थे। वे समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान इत्यादि की शिक्षा दिया करते थे। यह सोचना भी गलत है कि वे लोग क्रियात्मक शिक्षा की अवहेलना पूर्वक सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान किया करते थे। जिनकी युद्ध में लड़ने, खेती, व्यापार, कलाकौशल की ओर प्रवृत्ति होती थी उन्हें उन्हीं विषयों की शिक्षा दी जाती थी। वर्तमान समय में भी यह सब शिक्षायें विद्यार्थियों को दी जाती हैं। इस अन्तर के साथ कि प्राचीन काल में अध्यापकों और विद्यार्थियों के सम्बन्ध आध्यात्मिक थे और आज कल न्यूनाधिक रूप में व्यापारिक हैं। किसी विज्ञान के शिक्षण का प्रभाव वह चीज़ थी जो किसी विज्ञान विशेष के विद्यार्थी के ज्ञान से कहीं दूर विद्यार्थी में गुणों की वृद्धि करने वाली थी। अध्यापक का कर्त्तव्य था कि वह अपने शिष्य को शिक्षा दे, अपने घर में उसकी रक्षा करे और पुत्रवत् उससे व्यवहार करे।

बौद्धिक विकाश और दुनियादारी की शिक्षा व्यर्थ समझी जाती थी यदि वह व्यक्तित्त्व और चरित्र के समानान्तर विकाश की ओर मनुष्य को नहीं ले जाती थी। वे चरित्र पर, जिसका समाज पर शासन होना

चाहिए, बहुत बल देते थे। क्योंकि महाभारत में कहा गया है, "वे परिवार जिनमें धन हो, पशु हों, और काफ़ी सन्तान हो सम्मानित नहीं समझे जाते हैं यदि उनमें अच्छे आचार व्यवहारों की कमी हो। विपरीत इसके वे परिवार जिनमें धन का अभाव हो परन्तु आचार व्यवहार के लिए प्रसिद्ध हों सम्मानित समझे जाते हैं। चाहे उच्च हो या नीच हो, वह व्यक्ति जो शिष्ट व्यवहार के नियमों का उल्लङ्घन न करता हो, जिसकी निगाह गुणों पर हो, जो नम्रता और शालीनता से अलंकृत हो, उच्च वंश के सहस्रों व्यक्तियों से श्रेष्ठ होता है।" न मित्र, न धन, न उच्च वंश, न शास्त्रीय ज्ञान, न मंत्र, और न उत्साह किसी व्यक्ति को परलोक के कष्ट से मुक्त करने में समर्थ हो सकते हैं। आचरण ही है जिसके द्वारा कोई वहां आनन्द प्राप्त कर सकता है।" जिस व्यक्ति के पास पुस्तकों के विषयों का वास्तविक ज्ञान होता है वह उस व्यक्ति से बड़ा होता है जो केवल उन पुस्तकोंको याद रखता है और जो उस ज्ञान के अनुसार व्यवहार करता है वह उस व्यक्ति की अपेक्षा ऊंचा होत है जो केवल पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त किए होता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में शब्द के वास्तविक अर्थों में शिक्षा मनुष्य बनाने वाली थी और वह शिक्षा प्रत्येक प्रकार से जीवन की तय्यारी थी। शिक्षा का आध्यात्मिक आदर्श प्रमुख बनाया गया था और दुनियादारी का पहलू इस आदर्श के आधीन रक्खा गया था। शिक्षा की इस प्रकार के स्कीम व्यापक हित और सामाजिक आवश्यकता की योग की पूर्ति कर सकती थी। रेवरैंड एफ़, ई की (Rev. F. E. keay) अपनी 'प्राचीन भारतीय शिक्षा' नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"यदि शिक्षा की परिभाषा जीवन की तय्यारी वा पूर्ण जीवन बतलाई जाय तो हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय शिक्षक इस सिद्धान्त को पूर्णतया स्वीकार कर लेते परन्तु यह सिद्धान्त न केवल इस जीवन की तय्यारी को ही शामिल करता वरन् भविष्य जीवन की तैयारी को भी शामिल करता। इन दोनों उद्देश्यों में उचित परिमाण में दृढ़ता लाने का कार्य्य शिक्षकों के लिये सदैव कठिन कार्य्य रहा है। यदि यह कार्य्य पूर्णतया पूरा कर दिया जाय तो शिक्षा की बहुत सी समस्याएँ हल हो जायें। युरोप में मध्य युग में परलोक की तय्यारी पर बल दिया जाता था। वर्तमान युरोप शिक्षा के इस अंग की प्रायः अनुचित अवहेलना कर देता है। हिन्दुस्तान को ऐसी ही समस्या और उस समस्या के हल में उसे भी युरोप की कठिनाइयों से मिलती जुलती कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। शिक्षा के द्वारा नवयुवक ब्राह्मण पुरोहित तथा शिक्षक के रूप में अपने क्रियात्मक कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए तय्यार किया जाता था परन्तु परलोक के लिए अपने को तय्यार करने की जरूरत उसकी शिक्षा का अंग थी। यही बात क्षत्रियों और वैश्यों के सम्बन्ध में कही जा सकती है जिन्हें जीवन में क्रियात्मक काम के लिए अपने को न केवल तय्यार करना ही होता था वरन् वेदों का और धर्म्मका अध्ययन भी करना होता था।"

प्राचीन भारत के ऋषियों ने "आश्रम व्यवस्था" जीवन के क्रियात्मक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने के लिए

नही निर्धारित की थी। जो विद्यार्थी संसार का त्याग करने के योग्य नहीं होते थे वे गृहस्थ में प्रविष्ट हो जाते थे तब इसके बाद वे वानप्रस्थी होते थे और उसके बाद वह संन्यासी बन जाया करते थे। इस प्रकार समाज के लोगों के अपवादों को छोड़ कर क्रमशः विकास के द्वारा सत्य मार्ग का पथिक बनाने की शिक्षा दी जाती थी।

प्राचीन भारत में शिक्षक का पद बड़ी ज़िम्मेवारी का पद था और अध्ययन बड़ा पवित्र व्यवसाय समझा जाता था। अध्यापकों के अपने विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार के हवाले से मनु कहते हैं:—

"प्राणियों को कष्ट दिए बिना उनके हित की शिक्षा दी जानी चाहिए और जो अध्यापक पवित्र नियम का पालन करना चाहता हो उसे मधुर और कोमल वाणी का प्रयोग करना चाहिए। विचार और क्रिया से उसे दूसरों को अपने से भयभीत नहीं होने देना चाहिए। ऐसा करने से अर्थात् दूसरों को भयभीत करने से वह सुखों से वंचित हो जायगा।"

वर्तमान विद्यार्थियों और अध्यापकों में जो दूरी और पारस्परिक उदासीनता हम देखते हैं वे वर्तमान शिक्षा प्रणाली के कटु फलों में से हैं। और यह कहा जा सकता है कि जब तक उनके सम्बन्ध अधिक अच्छे, सहानुभूति पूर्ण, अधिक नज़दीक और ऊँचे नहीं होंगे तब तक शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति न होगी। जहाँ तक वर्तमान भारत की शिक्षा का सम्बन्ध है वर्तमान स्कूलों और कालेजों के अधिकारियों को प्राचीन काल के विद्यार्थी और अध्यापक के ऊँचे संबंध को पुनर्जीवित करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

प्राचीन काल के शिक्षकों की पढ़ाई की समाप्ति पर अपने शिष्यों के प्रति हिदायतों का स्मरण करना बड़ा मनोरञ्जक है। शिक्षक कहा करते थे:—

"सत्य बोलो! धर्म का आचरण करो! वेद से विमुख मत होओ! सत्य से विचलित मत होना। धर्म से विचलित मत होना। जो उपयोगी हो उसकी उपेक्षा मत करना। वेदों के अध्ययन को मत छोड़ना।"

यह कल्पना करना ग़लत होगा कि प्राचीन भारत में लोग सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति पर उचित बल नहीं देते थे। सामाजिक कृत्यों के ठीक २ अनुष्ठान पर बल दिया जाता था जिसके द्वारा आध्यात्मिक उन्नति और अन्त में ईश्वर प्राप्ति होती थी। इसका रहस्य निष्काम भाव से फल की इच्छा किए बग़ैर अपने कर्तव्य की पूर्ति करना और इस प्रकार प्रभु की उपासना करना था। इस प्रकार जीवन की फ़िलास्फ़ी और उसकी क्रियात्मकता भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का अङ्ग थी। इसका फल यह था कि विद्यार्थियों को जीवन की क्रियात्मक समस्याओं का हल विद्यार्थी जीवन में ही प्राप्त हो जाया करता था। यह बात बड़ी ज़रूरी है और वर्तमान शिक्षा में इसकी बड़ी कमी है।

आज हम लोगों को प्रायः यह कहते सुनते हैं कि नैतिक और धार्मिक शिक्षण स्कूलीय शिक्षण से बाहर की बातें हैं। उनसे हम कह सकते हैं कि नैतिक और धार्मिक शिक्षा से रहित केवल पुस्तक ज्ञान ने ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ पैदा की हैं जो जीवन के किसी भी क्षेत्र के लिए उपयोगी नहीं हैं, भले ही वह क्षेत्र पारिवारिक हो, राष्ट्रीय हो या सामाजिक हो। शिक्षा की यह प्रणाली यदि दूसरे पचास वर्ष तक जारी रहे तो

भय है राष्ट्र का, मनुष्यत्व पूर्णतया नष्ट हो जायगा।

जो शिक्षा हमारे लड़के प्राप्त करते हैं नकारात्मक है। इसका फल उनमें श्रद्धा का अभाव है। श्रद्धा से रहित मनुष्य का शीघ्र नाश हो जाता है। इसलिए हम विनाश के निकट हैं। इसलिए उपाय यह है कि आत्म ज्ञान की शिक्षा का प्रसार किया जाय।

इससे हमारा अभिप्राय बिखरे हुए बाल, सोटा, कमण्डलु या पर्वतों की गुफाएँ नहीं है। हमारा अभिप्राय फिर क्या है ? क्या वह ज्ञान जिससे सांसारिक बन्धनों से स्वतन्त्रता हासिल की जा सकती है साधारण भौतिक समृद्धि प्रदान कर सकता है ? निश्चय ही वह ऐसा कर सकता है। भारत के भावी शिक्षा भवन का प्रधान पत्थर 'श्रद्धा' होनी चाहिए और इसी में भावी सन्तान उच्च गुणों की विभूति और महिमा मय कृत्यों के स्रोत का दिग्दर्शन करेंगी। यही 'श्रद्धा' की समस्या को जिसे उन्नीसवीं शताब्दी में हर्बर्टस्पेंसर ने उठाया था और जिसे आज के नवयुवक और नव युवतियाँ उठा रही हैं हल करेगी। किस प्रकार ज़िन्दा रहना चाहिए ? यही हमारे लिए आवश्यक प्रश्न है। न केवल भौतिक अर्थों में ही वरन् विस्तृत अर्थों में। मुख्य समस्या जिससे प्रत्येक सामाजिक समस्या संबन्धित है—समस्त परिस्थितियों में समस्त दिशाओं में व्यवहार का उचित शासन है। किस रीति से शरीर का व्यवहार किया जाय, मस्तिष्क का व्यवहार किया जाय, किस रीति से अपने कामों की व्यवस्था की जाय, किस रीति से परिवार का पालन किया जाय, किस रीति से नागरिक के रूप में व्यवहार किया जाय, किस रीति से प्रकृति प्रदत्त आनन्द के स्रोतों का उपयोग किया जाय, किस प्रकार अपने अधिक से अधिक लाभ के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया जाय और किस रीति से पूर्ण जीवन व्यतीत किया जाय। वेद, उपनिषद् और गीता द्वारा प्रतिपादित 'श्रद्धा' न केवल मनुष्य की मुख्य शक्तियों को जागृत करेगी वरन् वर्तमान भारत को पुनर्जीवन प्रदान करेगी। बाईबिल, कुरान, बौद्ध तथा दूसरे धर्म शास्त्र श्रद्धा का जिक्र करते हैं केवल भिन्न २ तरीकों से और विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं और अधिकारियों का यह काम है कि वे भारत के स्कूलों और कालिजों में इसका प्रचार करें और वर्तमान शिक्षा की स्कीमों में इस असूल का समावेश करें। शारीरिक सौष्ठव, बौद्धिक विकास तथा मानसिक गुणों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिऐ परन्तु उन्हें श्रद्धा के पद चिह्नों पर चलते हुए स्वाभाविक और उपयोगी मार्ग का अनुकरण करना चाहिये। सैद्धान्तिक विवादों और धार्मिक कट्टरता में जाए बग़ैर भारतीय राष्ट्र के हितार्थ वर्तमान भारत के शिक्षकों द्वारा इस प्रकार के शिक्षण की उचित व्यवस्था की जा सकती है।

* * *

विविध पत्र-पत्रिकाएं

प्रचलित वर्णव्यवस्था का विध्वंश

श्री पं० रामविहारीलाल शास्त्री वेदतीर्थ, दयानन्द कालेज, कानपुर 'आर्य्यमित्र' में 'सब सुधारों की कुंजी' शीर्षक लेख में शास्त्रीय आधार पर यह सिद्ध करते हुए कि वर्ण चार ही हैं हिन्दुओं के प्रचलित सहस्रों वर्ण, जातियां और उप जातियां धर्म और शास्त्रानुमोदित नहीं है और हिन्दुओं में पारस्परिक रोटी-बेटी का व्यवहार न होना अधार्मिक और असङ्गत है। हिन्दुओं मुख्यतया सनातनधर्मियों से उपजातियों के विनाश की निम्न शब्दों में अपील करते हैं—

"कट्टर सनातनधर्मियों का यह परम कर्त्तव्य है कि सनातनधर्म के धार्मिक ग्रन्थों के विरुद्ध जितनी जातियां और उपजातियां प्रचलित हैं उनको नष्ट करदें और यह परस्पर रोटी बेटी का सम्बन्ध करने से ही हो सकता है। वर्तमान सनातनधर्म्मी जन्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था मानते हैं उसके अनुसार भी उनका परम कर्त्तव्य है कि वे केवल ४ वर्णों को कायम रक्खें तथा उनके उपवर्णों को तथा चारके अतिरिक्त और सब वर्णों को बिलकुल नष्ट करदें तथा उन चारों में भी रोटा बेटी का सम्बन्ध स्थापित करें जैसा आजकल महात्मा गांधी कहते हैं और करते भी हैं।"

आगे आर्यसमाज की वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में आर्यसमाज के कर्तव्य का निम्न प्रकार स्पष्टीकरण करते हैं—

"महर्षि दयानन्द का वर्ण-व्यवस्था के विषय में सिद्धान्त तथा मत है कि जन्म से वर्णव्यवस्था नष्ट कर दी जावे। गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था का पहला भाग हमारे आधीन है अर्थात् आर्य्यसमाज जन्म से वर्ण-व्यवस्था नष्ट कर सकता है। गुण कर्म के अनुसार वर्ण-व्यवस्था के कायम करने के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द का मत है कि वह बालकों की शिक्षा समाप्त होने पर आचार्य निश्चित करे और राजा उसको स्वीकार करे। अपना राजा नहीं न आर्य्यसमाज ने वर्तमान सरकार से कोई कानून गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था स्वीकार करने का बनवाया और न सब लड़के गुरुकुलों में ही पढ़ते हैं। ऐसी दशा में असंख्य जनता की वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार कैसे स्थापित की जावे। मेरे विचार में जबतक अपना राजा न हो या वर्तमान सरकार से वर्ण-व्यवस्था स्थापित की जाय तब तक आर्य्यसमाज का परम धर्म है कि वर्णव्यवस्था की पहली सीढ़ी तो चढ़े अर्थात् जन्म से वर्णव्यवस्था का नाश कर दे जो अपने हाथ की बात है। वह इस तरह हो सकता है कि सब आर्य्यसमाजी अपने को आर्य कहें, ब्राह्मण क्षत्रिय आदि न कहें। फिर देखिए कितने विद्यार्थी शुद्ध होकर आर्य्य बनते हैं और कितने सामाजिक सुधार, अभी सब में रोटी बेटी का सम्बन्ध स्थापित होता है और आर्य्य समाज उच्च शिखर पर पहुंचता है।"

अन्त में वे लिखते हैं—

"इस प्रकार निरन्तर परिश्रम करने से भारत में वर्तमान वर्णव्यवस्था का विनाश हो सकता है। जिसके कारण सब सुधार रुके पड़े हैं और कोई उन्नति नहीं हो सकती।"

आर्यसमाज

आर्य्य समाज का उद्देश्य वैदिक संस्कृति का प्रसार है। वैदिक संस्कृति वैदिक विचार और आचरण के सम्मिश्रण का नाम है। इस कार्य्य के करनेकी मुख्यतम शर्त मनुष्यके व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों जीवनों की उच्चता है। ये जीवन किस प्रकार उन्नत बनाये जा सकते हैं उसका आर्य्य समाज के दस नियमों में उल्लेख है। व्यक्ति और समाज का पारस्परिक क्या सम्बन्ध है, दोनों उन्नतियों का क्या अर्थ है? इस पर श्री बा० पूर्णचन्द्र जी "आर्यसमाज" शीर्षक लेख में प्रकाश डालते हुए लिखते हैं:—

"व्यक्तिगत उन्नतिके साथ २ सामाजिक उन्नति की भी परम आवश्यकता है। सामाजिक उन्नति से अभिप्राय उस सामाजिक दशा का है जिसमें रहकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखता हुआ और उन्नत बनाता हुआ दूसरों की उन्नति में साधक हो और इसीलिए सामाजिक उन्नति का एक आवश्यक अंग यह भी है कि व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध निश्चित और मर्य्यादा के अन्तर्गत रहे। व्यक्ति अपनी उच्छृंखलता और नाम मात्र की स्वतन्त्रता के नाम पर सामाजिक संगठन को छिन्न भिन्न न कर सके और न समाज अनुचित प्रतिबन्धों द्वारा व्यक्ति के विकाश को रोक सके।"

निरक्षरों का शिक्षण

'मिशनों की इन्टर नेशनल रिव्यू' नामक पत्र में श्रीयुत डाक्टर फ्रैंकसी ने एक शिक्षाप्रद लेख मे फिलीपाइन द्वीप में अपने साक्षरता के आन्दोलन के अनुभवों पर प्रकाश डाला है। उनके अनुभव तमाम देशों के समाज संशोधकों के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

"सबसे पहले हमने अपने विद्यार्थियों को क्लासों में पढ़ाया परन्तु धीरे धीरे हमें अनुभव हुआ कि व्यक्तिगत शिक्षण ज्यादा प्रभावोत्पादक है क्योंकि यह शिक्षण हमारे विद्यार्थी को प्रतिक्षण बातचीत करने के लिए विवश रखता था।

साक्षरता के आन्दोलनके लिए निरन्तर प्रोत्साहनों और असीम क़िस्मों की ज़रूरत होती हैं। निरक्षर लोग भीरु होते हैं और अपनी अज्ञानता का प्रकाश करने में बड़े लज्जावान होते हैं। जो पढ़ सकते थे हमने उन्हें पिनें दीं। जो घर पूर्ण रूप से साक्षर हो चुके थे हमने उन्हें पीले डिप्लोमे दिये। हमने टीन के चिन्ह लाल और पीले रँगवा कर पूर्ण साक्षर परिवारों के घरों के आगे लटका दिए। हमने एक बड़ा थर्मामीटर लगवाया जिस पर हम दिखलाते थे कि हर महीनेमें कितने व्यक्ति लिखना और पढ़ना सीख गये हैं।

लानाओ (Lanao) प्रान्त के प्रत्येक क़स्बे में हमने शिक्षित नवयुवकों की सोसाइटियाँ बनवाईं। उन नवयुवकों की जो अपने आदमियों की मदद करने और जो उन वालंटीअरों की सेना का अंग बनने की प्रबल इच्छा रखते थे जो घर २ जाकर पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाने का यत्न करते हुए घर २ फिरा करते थे। ये सोसाइटियाँ प्रान्त के प्रमुख समाज सेवक संगठन बन गये हैं। ये सोसा-

इटियाँ उत्तम पानी, स्वास्थ्य सम्बन्धी अत्यन्त वांछनीय सुधारों बिजलीके लिए उत्तम जल-शक्ति के इस्तेमाल उत्तम बीज और खेती के अधिक आधुनिक तरीक़ों और समाजसेवा के अन्य बीस प्रकारके काम हाथमें लिए हुए हैं। स्त्रियोंको विदित हो गया है कि पढ़ना आसानी से आ सकता है और इस बात ने उनके सामने हर्ष की एक नई दुनिया रखदी है और आज उनकी संख्या प्रति मास पढ़ने वाले पुरुषों की संख्या के बराबर है।

साक्षरता के आन्दोलन के लिए उस भाषा के जिसमें पहले से छपा हुआ कोई मैटोरियल और अच्छा मासिक-पत्र न हो प्रेस और पत्र शुरु में अत्यन्त आवश्यक होते हैं। निरक्षरता में से निकले हुए व्यक्ति शिक्षित लोगों की अपेक्षा अपने पत्र को ज्यादा ध्यान से पढ़ते हैं क्योंकि घर में वा क़स्बे में वह पत्र ही केवल छपा हुआ मैटर संभव हो सकता है। एक व्यक्ति ने मुझे बतलाया कि उसके गांवमें हमारा पत्र हज़ारों बारपढ़ा गया था।

फ़िलिपाइन यात्रा के दौरान में हमने ३ प्रकार के आन्दोलन जारी किए थे। पहले आन्दोलन को १ या २ चर्चों ने चलाया था। उनका उद्देश्य दुहरा था। एक तो समाज को साक्षर बनाना और दूसरे ईसाई धर्म के संदेश के लिए द्वार खोलने में आन्दोलन का प्रयोग करना।

दूसरे प्रकार का आन्दोलन सार्वजनिक था, वह प्राइवेट स्कूलोंके द्वारा चलाया गया था। हमने लगभग अत्यन्त होशियार दस विद्यार्थियों को चार्टों का प्रयोग सिखलाया। इसके बाद तमाम स्कूल इन शिक्षित विद्यार्थियों में विभाजित हुआ था। इन विद्यार्थियों पर दूसरों को शिक्षण-पद्धति सिखाने की जिम्मेवारी होती थी। इस प्रकार तमाम स्कूलने शिक्षापद्धति सीख ली थी। तीसरे प्रकार के आन्दोलन को म्यूनिसिपल कमेटियों के अधिकारियों ने चलाया था। इन अधिकारियों ने प्राइवेट लोगों और कमेटियों के कर्मचारियों को भी आंदोलन में शरीक कर लिया था। म्यूनिसिपल कमेटी का एक बड़ा नक़शा टाउन हॉल में रख दिया जाता था और पूर्ण साक्षर घरों को सुनहरे चिन्हों से चिह्नित कर दिया जाता था। जब तक प्रत्येक घर पर सुनहरी चिन्ह नहीं लग जाता था तब तक आन्दोलन जारी रहता था।

इस तरीक़े की दो मुख्य विशेषताएँ हैं। एक समय में हम केवल एक विद्यार्थी को पढ़ाते हैं ज्योंही वह पढ़ लिख लेता है त्योंही हम उसे दूसरों को पढ़ाने के काम पर लगा देते हैं। इसने दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है। एक तो जो कुछ वह पढ़ता है वह ताज़ा बना रहता है और दूसरे आन्दोलन के संचालन के लिए कार्यकर्ता मिल जाते हैं।"

कन्या-वध

उपर्युक्त शीर्षक से "हरिजन सेवक" में महात्मा गांधी लिखते हैं—

"आज भी इस हतभाग्य देश में कन्या-वध जैसी निर्दय, अमानुषी प्रथा चल रही है यह मानने में कष्ट होता है। लेकिन जो पत्र मेरे सामने पड़ा है वह मुझे यह मानने पर मजबूर करता है विहार जिला भागलपुर, के देहात अमरपुर में राजपूत-कन्या-वध विरोधिनी सभा स्थापित हुई है। इस बारे

में सभा-मन्त्री ने एक दुःखजनक ख़त लिखा है। उसमें से नीचे थोड़े फ़िक्रे दिये जाते हैं—

"भगवान बुद्धने बकरों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी थी। आज उन्हीं की सन्तान अपनी सद्यःप्रसूता कन्या को मारने में लगी हुई है। मनुष्यता को कलंकित करने वाली यह कुप्रथा हम राजपूतों में ही है। ऐसे भी घर हैं जहां एक दारोगा, एक तहसीलदार तथा पढ़े-लिखे युवक हैं। आज ५० वर्षों से उनके घर एक भी कन्या नहीं रक्खी गई। ज़रा उस दृश्य की कल्पना करें जब बच्ची पैदा होते ही मां उससे अलग हो जाती है। दूध नहीं दिया जाता है, बच्ची दम घुटकर मर जाती है। यों नहीं मरी तो नमक चटा कर अथवा तम्बाकू खिलाकर मार दी जाती है। सब से सरल तरीका तो यह है, कि उसके मुंह-नाक पर मांस का लोथा रख दिया जाता है। कैसा घृणित तरीक़ा है। बकरे को तो हथियार से मारते हैं, लेकिन निस्सहाय मुंह से भी आवाज़ नहीं निकालने वाली बच्ची को दम घुटाकर मारना—कितना अनर्थ है।

"पञ्जाब के जाट राजपूतों और जाट सिक्खों में यह कुप्रथा थी। पंजाब-कौंसिल में इसे रोकने के लिए ख़ास क़ानून बनवाया गया। पर हमारे यहाँ लोग संकोच करते हैं।"

धर्म तो सिखाता है कि जीव-मात्र अन्त में एक ही हैं। अनेकता क्षणिक होने के कारण आभासमात्र है। लेकिन राष्ट्र-भावना भी हमें यही पाठ देती है। हम अपने को राजपूत इत्यादि नहीं मानते हैं; न बिहारी, पंजाबी इत्यादि। हम अपने को हिन्दुस्तानी मानते हैं और एक ही राष्ट्र मानते और मनाते हैं। इसलिये धर्म-दृष्टि या राष्ट्र-दृष्टिसे हम एक हैं और एक के दोष की ज़िम्मेदारी हम सब पर आती है। इस न्याय से इस राजपूत-कन्या-वध के लिए हम सब, राजपूत हों या कुछ भी हों, ज़िम्मेदार हैं। एक दूसरे के दोष, एक-दूसरे की आपत्ति के लिए हम उदासीन न रहते तो कन्या-वध आज तक निभ नहीं सकता था। इसमें न धर्म का बहाना है, न कोई आवश्यकता का। कोई एक युग होगा कि जब राजपूत-जीवन अनिश्चित होने के कारण कन्या-जन्म आपत्तिजनक माना जाता होगा; आज तो यह बहाना रहा ही नहीं है। दूसरों की अपेक्षा राजपूत-जीवन अधिक अनिश्चित है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। राजपूतों के सिर पर आज युद्धका बोझ नहीं रहा है। आज राजपूत को अपनी तलवार साथ में रखकर सोना नहीं पड़ता है। राजपूत-क़ौम भले ही हो, राजपूत-धर्म जैसी कोई वस्तु नहीं रही। फिर कन्या-वध क्यों? कन्या का बोझ क्या? बोझ तो उन लोगों पर अवश्य पड़ता है जो अपनी कन्या के लिए पति ख़रीदते हैं और दम निकल जाय इतना दाम देना पड़ता है। ईश्वर की कृपा है कि वे अपनी कन्या का वध करने तक नहीं पहुँचे हैं।

मुझे नहीं पता है कि—आज राजपूत कन्या-वध के लिए कोई बहाना बताया जाता है क्या? अगर कोई ऐसा बहाना है तो नई सभा का इस पर प्रकाश डालना कर्तव्य है। लेकिन बहाना हो भी सही, उसे दूर करना धर्म होगा। कोई बहाना इस राक्षसी प्रथा को क़ायम करने में कभी मान्य नहीं हो सकता। लोक मत को संगठित करके शीघ्र ही

इस प्रथा को मिटाना चाहिए।

आर्य्य समाज की वर्तमान अवस्था

श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए० 'आर्यसमाज की वर्तमान अवस्था' शीर्षक में आर्य्य समाज की धड़े बन्दियों के सम्बन्ध में ठीक ही लिखते हैं—

"पार्टीबाजी, धड़ेबन्दी का भाव वास्तव में पोलिटिकल समाजका भाव है। धार्मिक समाजमें इसका आविर्भाव होना और वह भी इतने बड़े पैमाने पर जितना कि आजकल आर्यसमाजमें आविर्भाव होरहा है साफ़ जाहिर करता है कि हमने आर्यसमाज में राजनैतिक समाजों की रीति नीति प्रचलित करदी है। राजनैतिक दायरे में रजोगुण प्रधान रहता है। धार्मिक समाज में जहां सतोगुणप्रधान जीवन का राज्य होना चाहिए भला वहां इस प्रकार की धड़ेबन्दी और पार्टीबाजी का क्या काम। वहाँ तो काज या प्रोग्राम ही दूसरा है। वहाँ अपने स्वार्थको छोड़ना और दूसरों के लिए जीना ही ध्येय होता है। ऐसी हालत में वहां अधिकारों के लिए लड़ना दूसरों को पछाड़ना, नीचा दिखाना, स्वार्थ का व्यवहार करना ये सब बातें बेमानी और व्यर्थ दिखाई देती हैं। दुनियादारी और ईमानदारी दो भिन्न २ चीज़ हैं। धर्म के क्षेत्र में जो बातें शोभा देती हैं, वे यह हैं कि हम दूसरों को आगे बढ़ाएँ, भलाई का बदला न चाहें, खुद पीछे और निष्काम सेवा करते जाएँ—

परन्तु इस वक्त आर्य्यसमाज में यह बातें कहाँ हैं? हम पद और अधिकार के लिये लालायित रहते हैं यदि हमने सेवा ही करनी है और वह भी धार्मिक भाव से तो हमें यह न भूलना चाहिए कि ईश्वरका साम्राज्य तंग नहीं और भिक्षुक की टागें लगड़ी नहीं हैं—यदि कुछ भाई यह समझते हैं कि मैं किसी स्थान पर उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहा हूँ चाहे उनका यह ख़याल ग़लत ही क्यों न हो मुझे बेपरवाह होकर स्वयं उस स्थान से हट जाना चाहिए और उन भाईयों के लिए रास्ता साफ़ कर देना चाहिए। यदि मेरे स्थान पर दूसरे भाई अच्छा काम कर दिखाएँ तो मैं उन्हें गले लगा कर शाबाश कहूं क्योंकि जो काम मैं न कर सका उन्हों ने कर दिखाया। यदि मेरे स्थान पर उनका काम अच्छा सिद्ध न हो तो मुझे कोई अभिमान न होना चाहिए और अपने भाईयों के पुनः बुलाने पर तत्काल सेवा के लिए हाज़िर हो जाना चाहिए। यही धर्म है। यही निष्काम सेवा है। हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि दुनिया के सब काम चलते रहेंगे। चाहे हम उन कामों में दूसरे लोगों का हाथ बटावें या न बटावें। हम मोह और गर्व के वशीभूत हो यह समझने लग जाते हैं कि फलां काम यदि हम न करेंगे तो चौपट हो जायगा। हमने अपने कानों यह कहते सुना है कि क्या हम अपने सामने अपने लगाये पौधे को उजड़ता देखें? सोचने की बात है कि यदि पौधा उजड़ने लायक है तो हमारे यत्न के होते हुए भी उजड़ जायगा और यदि उजड़ने लायक नहीं है तो हमें फिक्र क्यों? हमारी अपनी चिन्ता और अधीरता काम खराब कर देती है और हम ख़ुद अपने लगाए पौधों के के उजड़ने का कारण बन जाते हैं।

पार्टीबाजी का अन्त कैसे हो? इसके लिए आवश्यक है कि हम अन्तर्मुखी होकर पहले यह

निश्चय करें कि हम आर्यसमाज में आत्मा की शान्ति के लिए हैं या केवल समय गुज़ारने या कोई शग़ल बनाए रखने के लिए। यदि आत्मा की शान्ति वांछनीय है तो हमें अपने भीतर आत्मिक भूख पैदा करनी चाहिए। जब तक वह भूख पैदा नहीं होती तबतक एकान्त सेवन करना चाहिए। यदि इसके लिए समाज से कुछ समय के लिए हट जाना पड़े तो हट जाना चाहिए। जो लोग यह भूख लेकर समाज में जावेंगे उनको पदों और अधिकारों की लालसा कहां ?

उन्नति और भारत वर्ष

पश्चिमी सभ्यता अपनी मूल भूत गड़बड़ को लिए हुए व्यक्तिवाद के आन्तरिक जीवनमें वास्तविक समता पैदा करने में सफल नहीं हो सकती। उन्नति के लुभावने नाम पर परिवर्तन सहन किए जा रहे हैं। फिलीपाइन विश्वविद्यालय के प्रो० धीरेन्द्र नाथ राय 'हिन्दू रिव्यू' में लिखते हैं—

'परिवर्तन' की चाह ही है जो पश्चिमके जीवन पर प्रतिबिम्बित देख पड़ती है। कोई समय था, बहुत अर्सा नहीं हुआ जब पश्चिम के लोग 'वोड' (Woad) नामक एक पौधे से (जिसकी पत्तियाँ उबालने पर बहुत बढ़िया नोला रंग छोड़ती हैं) अपने शरीरों को रंगा करते थे। उन्होंने इस रंग का लगाना छोड़ा और ऐसा करने वालों को 'जंगली' कहकर तिरस्कृत किया। अब भी अपनी इस प्रकार की सीधी-साधी प्रथा के कारण बहुत से आदिम लोग तिरस्कृत होते हैं। यदि आज कल कोई आदमी यह देखना चाहता हो कि किन लोगों में शरीर गोदवाने की प्रथा ज्यादा प्रचलित है तो उसे पश्चिम की जल और स्थल की सेनाओं के शरीरों को देखना चाहिए। उनकी चमड़ियों पर गोदी हुई चीज़ों की ओर देखना चाहिए और सभ्य कहे जाने वाले पश्चिम के इन लोगों के सौन्दर्य-रुचि का आदिम काल के लोगों की रुचि के साथ मुक़ाबला करना चाहिए और इस सम्बन्ध में पश्चिम की 'उन्नत' ललनाओं को कौन भूल सकता है ? उनकी ओठों की लाली, चमड़ी का बाहरी कोट इत्यादि सब चीज़ें क्या हैं ? क्या ये सब लोगों की आंखों में अपने को आकर्षक बनाने की वही पुरानी इच्छा नहीं है ? कहा जाता है कि यह सब रहन-सहन का वर्तमान तरीक़ा है ? इसमें क्या नवीनता है ? प्राचीन मिश्र की स्त्रियाँ शृंगारदानों का प्रयोग किया करती थीं जिसमें आठ प्रकार के उबटनों के लिए खाने होते थे। रामायण और महाभारत काल की हिन्दू देवियाँ भी इसी प्रकार के उबटन रखती थीं। आज भी उनके शृङ्गार के भिन्न २ बहुमूल्य ढंग है—

सम्भवतः इस सम्बन्ध में मुस्लिम देवियां अपने समय की दूसरी पूर्वीय स्त्रियों की अपेक्षा ज्यादा परिश्रमशील रही हैं पश्चिम की स्त्रियों ने सुन्दरताकी वृद्धिका एक तरीक़ा इख्तियार किया है। वे भोहोंको बिल्कुल निकाल देती हैं और उनके स्थान पर बहुत पतले काले महराब बना लेती हैं। हमें पता नहीं कि कोई पूर्वीय स्त्री इस प्रकार अपनी सुन्दरता बढ़ाती है। इस पर भी पश्चिम में स्त्रियाँ 'स्वाभाविकता' की 'वाह वाह' लूट सकती हैं। तौभी यह देखना रह जाता है कि इस प्रकार की काट-छांट परिवर्तन है या उन्नति या केवल मामूली

परिवर्तन। यदि पश्चिम में वास्तविक उन्नति हो जाय तो क्या उसका भारत की संस्कृति से जो पश्चिम के लिए बहुत लाभदायक है कोई मुकाबला हो सकता है ? मान लो वर्तमान उन्नति उन्नति है जब कि समुद्री डाकुओं का पुराना पेशा साम्राज्य-वादियों के पेशे के स्थान पर रख दिया गया हो, जब जादूगरनियों का शिकार करने वाले ईसाई सिपाही या मिशनरी बन गए हों जब झूठ प्रोपैगंडा बन गया है, धोखा डिप्लोमेसी (कूट नीति, बन गई हो, गुप्त षड्यन्त्र शान्ति के पैक्ट बन गये हो। इन्द्रिय विलास जीवन का ऊँचा स्टैंडर्ड बन गया हो इत्यादि २ तब क्या इस प्रकार की उन्नति पश्चिम के लोगों को, भारतीयों की अपेक्षा जिन्हों ने इन चीज़ों को कुछ दूसरी चीज़ों के कारण जिन्हें उनके तजुर्बे ने अच्छा और लाभदायक साबित किया, बहुत पीछे छोड़ दिया या ज्यादा उन्नत बना सकती है। यह सत्य है भारत की उन्नति कुछ अर्से तक बहुत धीमी रही है और पश्चिम तेजी के साथ बढ़ रहा है परन्तु पश्चिम किस ओर बढ़ रहा है ? उसका उद्देश्य क्या है ? क्या भारत और पश्चिम का सम्मिलित उद्देश्य है ? क्या दोनों एक ही मार्ग पर हैं। मुक़ाबला करने से पूर्व क्या हमें पहले प्रश्नों का उत्तर नहीं जान लेना चाहिए ?

नेत्र रक्षा

पं० जगन्नाथ जी आयुर्वेदाचार्य्य 'नेत्र रक्षा' के शीर्षक में 'सनातनधर्म' में नेत्र रोग के निम्न कारण बतलाते हैं:—

(१) गर्म से तप्त होने पर तत्काल जल में स्नान करना।
(२) बहुत दूर की चीज़ देखना।
(३) दिन में सोना तथा रात्रि में जागना।
(४) पसीना अधिक आना।
(५) धूलि व धूम्र (धुवां) में अधिक रहना।
(६) वमन के वेग को रोकना।
(७) अधिकतर पतले पदार्थ खाना।
(८) वमन का अधिक होना।
(९) मल, मूत्र वायु के वेग को रोकना।
(१०) निरन्तर रोदन, शोक तथा संताप।
(११) शिर की पीड़ा।
(१२) अधिक मद्य (नशीली) चीज़ों का सेवन।
(१३) ऋतु का विपरीत होना।
(१४) अधिक दुःख।
(१५) अति मैथुन।
(१६) आंसुओं को रोकना।
(१७) अधिक सूक्ष्म तथा तेज़ पदार्थों का देखना।

कुशती के पेंच

श्री श्रीराम शर्मा 'विशाल भारत' में 'एक महत्व पूर्ण पुस्तक की आयोजना' शीर्षक में कुश्ती के पेंचों के सम्बन्ध में निम्न प्रकार प्रकाश डालते हैं—

प्र०—पेच कितने होते हैं ?

उ०—तीन सौ साठ पेचोंका लेख मिलता है—दावँ और उनके काट मिला कर।

प्र०—कृपा करके कुछ पेचों के नाम बताइये।

उ०—सामान्य रूप से पेचों को चार भागों में विभजित कर सकते हैं—(१) सामने के पेच, अर्थात् वे पेच, जो सामने से चलाये जाते हैं; (२) पीछे के पेच, (३) नीचे से निकलने के पेच, (४) चित करने के पेच।

सामने के पेच

१ दस्ती, २ दुदस्ती, ३ धोबीपाट, ४ निकाल, ५ मुल्तानी, ६ ढाक, ७ तेगा, ८ इकटंगा, ९ बगली, १० पुट्ठी, ११ पट, १२ कलागंज, १३ गिरह, १४ सखी, १५ बैठक, १६ बाजा, १७ बाहरली, १८ भीतरली, १९ गललपेट, २० घुड़पड़ाँग, २१ इकहरापट, २२ सीधा तीरकश, २३ आड़ा तीरकश, २४ नारटाँग, २५ नागपेच, २६ लुकान, २७ डूब, २८ चपरास, (अंटी), २९ मौजा निकालना, ३० झोरी, ३१ कैंची, ३२ सामनेकी रूम, (घूमना), ३३ झड़म, ३४ उडंगमार, ३५ खपचा, ३६ गड़िहत्था, ३७ जोड़, ३८ गलखोड़ा, ३९ खसोटा, ४० उतार, ४१ पाँवदस्ती, ४२ दस्तमौजा, ४३ रोड़, ४४ दस्तबन्द, ४५ बगलबन्द, ४६ बाजूबन्द ।

पीछे के पेच

१ उखाड़ घस्सा, २ गोलालाठी, ३ मच्छीगोता, ४ महावती, ५ उल्टी, ६ खपचा की उखाड़, ७ पीछे की गिरह, ८ पटकी मोस, ९ गलउखाड़, १० कुप्पी, ११ जम्बूरा, १२ मुश्कबन्द ।

नीचे से निकलने के पेच ।

१ कुप्पी तोड़ना, २ ठिब्बी, ३ गधालोट, ४ धड़ मारना, ५ गिर्दबाँह, ६ ढेकली, ७ रूम, ८ बाहरलीकी टाँग, ९ भीतरलीकी टाँग, १० बिजली चमक, ११ बिलैया, १२ पुश्तक, १३ ग़ोता ।

चित करने के पेच

१ घिस्सा, २ तारकश, ३ कुंडा, ४ सवारी, ५ इकटंगा, ६ कमरपेटा, ७ चिराग़दान, ८ चरखा, ९ शकल समेट, १० बकरी पछाड़, ११ सल्लड़, १२ बंगड़ १३ बेलन, १४ हफ्ता, १५ मुँहपट्टी, १६ निमाज़बन्द, १७ परीबन्द, १८ बालसाँगड़ा, १९ साँडी, २० लपेट, २१ नाथमुरघा, २२ झोला, २३ सड़ासी, २४ देवबन्द ।

श्री स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द जी का निधन

(सम्वाददाता द्वारा)

"स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द जी आर्य्य समाज के बड़े तपस्वी और त्यागी संन्यासी थे। उन्होंने बैंगाल, विहार, युक्त प्रान्त, पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, मालवा, राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, महाराष्ट्र, बरार, सी० पी० ग़रज़ की लगभग समस्त भारत में वैदिक धर्म का प्रचार किया था। पिछले कई वर्षों से बम्बई प्रान्त उनकी प्रचार प्रगतियोंका मुख्य केन्द्र रहा। लगभग ६, ७ साल पर्य्यन्त कोल्हापुर राज्य में निरन्तर प्रचार किया। पिछले ८-१० वर्ष से बम्बई आर्य्य समाज को उन्हों ने अपना हैडक्वार्टर बनाया हुआ था। २-७-३६ को महाराष्ट्र आर्य्य समाज लोअर परेल बम्बई में व्याख्यान देने गए थे। व्याख्यान देने के बाद उनके सिर में कुछ दर्द हुआ और चक्कर आने लगे। यह शिकायत उत्तरोत्तर बढ़ती गई और उनको कुछ ऐसा विश्वास हो गया कि मेरी जीवन-यात्रा समाप्त होने वाली है। बुधवार ता० ९-७-३६ को उन्हों ने अपनी सम्पत्ति तथा दाहकर्म इत्यादि के सम्बन्ध में एक वसीयत लिख दी। १०-७ ३६ को दिन के २ बजे वे हमसे बिदा हो गए। संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से हुआ। देहान्त के समय स्वामी जी की आयु ७२ वर्ष की थी।

(श्री स्वामी जी के जीवन के संस्मरण बड़े मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। हम 'प्रकाश' में श्री पं० कृष्ण जी द्वारा लिखित ऐसे ही एक संस्मरण को नीचे उद्धृत करते हैं। हम चाहते हैं आर्य्य समाज की जीवित तथा मृत ऊंची हस्तियों के संस्मरण अधिक से अधिक जनता के समस्त आते रहें जिस से उसे प्रकाश मिलता रहे। 'सार्वदेशिक' अपने स्तम्भों के द्वारा इस काम में अपना योग देने के लिए उद्यत है।

—सम्पादक)

आर्य्यसमाज की मौजूदा नस्ल शायद स्वामी ओंकार सच्चिदानन्दजी के नाम से भी परिचित न होगी। परन्तु उन्होंने बरसों पंजाब में आर्य्य समाज की सेवा की है और चूंकि ऐसे दिनों में जब कि ज़्यादा मैं सभा का मन्त्री रहा इसलिए जानता हूँ कि वे कैसे श्रेष्ठ पुरुष थे। आर्य्य समाज के प्रचार की जो धुन उनमें थी उसका क्या कहना? वे निहायत ही सरल और सौम्य स्वभाव के थे। आवश्यकताएँ उनकी बहुत कम थीं इसलिए हर जगह काम कर सकते थे। आम फ़हम बोलने

वाले थे। तबीयत में मज़ाक था। इसलिए लोग उनके उपदेशों को बड़े चाव से सुनते थे। यद्यपि वे जन्म के लिहाज़ से मरहटा थे परन्तु उन्होंने आर्य भाषा का इतना अभ्यास कर लिया था कि सब जगह काम कर सकते थे। पंजाब में कई वर्ष काम कर लेने के बाद एक दिन वे मेरे पास आए और कहा मन्त्री जी अब बम्बई प्रान्त को लूटने की इच्छा हुई है।' मैंने कारण पूछा तो उन्हों ने कहा 'आपके यहां तो काम करने वाले बहुत हैं लेकिन वह प्रान्त सुनसान पड़ा है। वहां जाकर मैं ऋषि के मिशन का प्रचार करूंगा' मैं एक परिव्राजक को कैसे रोक सकता था। मैंने कहा 'स्वामी जी जब आप जाने का निश्चय कर ही चुके तो आप क्यों रुकेंगे? जाइए। परन्तु एक शर्त के साथ वह यह कि आप पंजाब का स्मरण रक्खे।' खैर वे चले गए। पिछले साल जब मैं बम्बई गया तो आर्य समाज मन्दिर में मैंने उनके दर्शन किए उन्हों ने मन्दिर की एक २ जगह को बड़े शौक़ से दिखलाया उन्हों ने कहा कि "यह कुवां स्वामी दयानन्द जी ने खुद अपने सामने बनवाया था और इस कुवें के थड़े पर ऋषि बैठा करते थे। जब मैं उनसे विदा लेने लगा तो मैंने उनसे पूछा "क्या आपको वह प्रतिज्ञा याद है जो आपने मुझसे की थी?" उन्होंने पूछा 'कौनसी?' मैंने कहा "यह कि आप पंजाब को स्मरण रक्खेंगे। आपने तो उसे ऐसा भुलाया कि आने का नाम तक नहीं लिया। अब ही आप अपने वायदे को पूरा करें और इस वर्ष आने की कृपा करें" उन्होंने उत्तर में हंस कर कहा 'अरे बाबा! इस प्रान्त में अम्बेदकर ने जो आग लगाई है उसे शान्त करने की ज़रूरत है मैं पंजाब कैसे आ सकता हूँ? मैं तो इस प्रान्त के एक २ स्थान पर जाऊंगा और एक २ अछूतको समझाऊंगा कि वह अम्बेदकर के जाल में न फसें।" आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अर्द्धशताब्दी पर वे लाहौर पधारे थे। उन दिनों उनका स्वास्थ्य बहुत उत्तम था। हां आंखों की शिकायत ज़रूर थी और उसके इलाज के लिए वे लाहौर ठहरे भी थे। लेकिन उन्हें देखकर किसी को गुमान भी न हो सकता था कि वे चन्द ही माह में हम से जुदा होने वाले हैं। उनकी मृत्यु सारे आर्य समाज के लिए एक भारी नुक़सान है।"

सामाजिक-जगत

इन्दौर (स्टेट) में पुलिस कर्मचारियों का समाज के प्रचार में अनुचित हस्तक्षेप

आर्य्य-प्रतिनिधि सभा राजस्थान (मालवा) की ओर से श्री स्वामी नित्य सुन्दरानंद मंदसोर, पण्डित गोकुलचन्द जी भजनोपदेशक तथा आर्य्य-समाज नारायणगढ़ के मन्त्री म० दीपचन्द जी ८-६-३६ को प्रचारार्थ आए। पिछले ८ महीनों से यहाँ के कुछ शिक्षित व्यक्तियों ने गाँव में एक स्थान किराए पर ले रक्खा है। आगन्तुक सज्जनों को इस मकान में ठहराया गया। समाचार पाकर हेड कान्सटेविल पोलीस मुहम्मद फ़ारुकहोश अब्दुल रहमान के साथ उन लोगों के पास आया और उन सज्जनों से गुस्से में पूछा कि उन्हें वहाँ किसने ठहराया है। उनके नाम पता इत्यादि उसने नोट किया और उनके सामान की जांच पड़ताल की। कुछ अपशब्दों का भी प्रयोग किया। म० सीताराम जी को जो यहां आर्य्य-समाज के प्रचार की व्यवस्था किया करते हैं तथा जिन्होंने इस प्रचार की व्यवस्था की थी, उसने कहा कि जब वे किसी को धर्म्म प्रचार के लिए बुलाया करें तो उसे सूचना दिया करें—अन्यथा हथकड़ी पहनाकर उनका चालान कर दिया जायगा। म० सीताराम जी के ये सब बातें लेख-बद्ध मांगने पर लिखकर देने से उसने इन्कार कर दिया। उसी दिन शाम के वक्त जब बाज़ार में धर्म्म-प्रचार हो रहा था, हैड कान्सटेविल यूनिफ़ार्म में मय ३-४ अन्य सिपाहियों के आया और कहा 'बन्द रक्खो। मत बोलो'। निदान प्रचार बन्द कर दिया गया। उसने एक रिपोर्ट पर जो उसने स्वयं लिखी थी दस्तख़त कराए। हमारे रिपोर्ट का मज़मून पूछने पर बतलाने से इन्कार कर दिया। इस पर समाज के लोग पुलिस स्टेशन (थाना) गए और स्थानीय पुलीस आफ़ीसर की पूछताछ करने पर हैड मुहर्रिर पुलीस से विदित हुआ कि वे बाहर दौरे पर गए हैं।

तब लोगों ने मुहर्रिर से सब हालात बयान किए। बयान सुनने पर मुहर्रिर नें उन्हें बतलाया कि मुहम्मद फ़ारुक (हैड कान्सटेविल) ने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है उन्होंने यह भी बतलाया कि आर्य्य-समाज के प्रचार से जनता नाराज है, झगड़े का अन्देशा है। इस पर समाज के लोगों के रिपोर्ट सुनाने का मतालबा करने पर मुहर्रिर ने बतलाया कि जनता की रिपोर्ट नहीं है बल्कि हैड कान्सटेविल की है। उस दिन प्रचार नहीं हो पाया।

दूसरे दिन समाज के लोग थाने में गए और एक दरख्वास्त पेश की जिसमें मांग की गई थी कि या तो प्रचार की आज्ञा दी जाय या बन्दिश की तहरीरी आज्ञा दी जाय। इस पर हैड मुहर्रिर साहब ने प्रचार की आज्ञा दे दी और प्रचार कार्य्य २ दिन तक बड़े समारोह के साथ हुआ।

बिहार प्रान्त में ईसाईयों की प्रगतियाँ

आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार के प्रधान श्री पण्डित

वेदव्रत जी ने प्रेस को निम्न वक्तव्य दिया है:—

"पिछले कुछ सालों से जब से आर्यसमाज ने दलित भाइयों में प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया है और आर्य्य जीवनके आदर्शों और उसके प्रति उनके कर्तव्यों की व्याख्या करनी शुरू की है तब से उनकी ओर दूसरे मज़हबों के प्रचारकों का विशेष ध्यान खिंचना शुरू हो गया है। ये लोग दलित भाइयों को जो हिन्दू समाज का अङ्ग हैं अपने धर्म में दीक्षित करने का एक सुरक्षित विभाग समझते रहे हैं। हम बड़े आश्चर्य के साथ देखते रहे हैं कि प्रायः जब कोई समाज वार्षिकोत्सव के समय जलूस निकालना चाहता था तब अधिकारियों की ओर से असाधारण और अपमानजनक शर्तें लगाई जाती थीं। जलसों में भी जिनमें समाज के कार्यकर्त्ता बोलना चाहते थे स्पेशल मजिस्ट्रेट की नियुक्ति जो प्रायः समाज के कार्यकर्त्ताओं की निर्दोष धार्मिक प्रवचनों और व्याख्यानों के लम्बे लम्बे नोट लिखने में व्यस्त रहता था, अनजान जनता में सन्देह और घबराहट पैदा कर देती थी। जब से छोटा नागपुर की जंगली और दूसरी जगहों की तथा कथित दलित जातियों में आर्यसमाज के काम से विश्वास पैदा होना शुरू हुआ है ईसाई मिशनिरियों ने आर्यसमाज की इस

प्रगति पर कुठाराघात करने का यत्न शुरू कर दिया है। और अपने इन यत्नों में उन्हें सरकार से भी सहायता मिली है जिसने समाज के कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध सरक्यूलर निकालकर कतिपय क्षेत्रों में उनका प्रवेश असंभव बनाकर आर्य्यसमाज की इस प्रगति को कुचलने का (अप्रत्यक्ष) यत्न किया है। जब दूसरे मज़हबों के मिशनरी बड़ी २ सभाओं में भाषण देते हैं वा शुद्धि का अपना कार्य करते हैं तब सरकार की ओर से इस प्रकार की किसी प्रगति को न देख कर हमें बड़ा आश्चर्य होता है। उन पर न कोई प्रतिबन्ध लगाया जाता है, न कोई मजिस्ट्रेट नियुक्त किया जाता है और न कोई गुप्त सरक्यूलर जारी किया जाता है। हमें आश्चर्य है कि आर्य समाज के हिन्दू प्रचारक ही इस प्रकार की देख रेख के लिए क्यों चुने गये हैं? अपने दफ़्तर में इन दिनों हम देखते हैं कि जब कोई प्रचारक या भजनीक बाहर से आता है तो बहुधा पुलीस आती है और उसके पिछली प्रगतियों के जानने की कोशिश करती है। कुछ दिन हुए, कुछ ज़िम्मेवार पुलीस अधिकारी मेरे दफ्तर में आए और यह जानना चाहा कि आनेवाले कौन्सिल चुनाव में आर्य्य-समाज क्या करेगा। क्या वह कांग्रेस को मदद देगा या हिन्दू-सभा के उम्मेदवारों को?

चम्पारन में पिछले कुछ दिनों तक आर्य्य-समाज की प्रगतियां बहुत अच्छी और मजबूत नहीं थीं और ईसाई मिश्नरी केवल एक गांव वेतिया में ४००० से अधिक हिन्दुओं को ईसाई बनाने में सफल हो चुके थे और ईसाई बनाने का सिलसिला चुपके २ ज़ोरों से जारी था। आर्य्य-समाज ने इन लोगों की तरफ़ अपना ध्यान लगाया और दो प्रमुख व्यक्तियों पण्डित शिवरुद्रा शर्म्मा और बा० गंभीरसिंह को जो वेतिया राज में स्कूल-अध्यापक थे शुद्ध किया। अब इन दोनों ने आर्य्य-समाज का कार्य्य हाथ में ले लिया है। मोतीहारी और वेतिया में इससे बड़ी बेचैनी फैल गई है और पटना में भी कुछ हलचल पैदा हुई है।

सन्थाल परगना में भी आर्य्य-समाज की प्रगतियों से ईसाई मिश्नरी चौकन्ने हो गए हैं। श्रद्धानन्द ट्रस्ट द्वारा "उपदेशक विद्यालय" की रांची में स्थापना

से आग में ईंधन पड़ गया है। ट्रस्ट के मन्त्री तथा समाज के प्रमुख और प्रभाव शाली सदस्य श्री पं० धर्म्मवीर जी वेदालङ्कार ने आर्य्य-समाज के विरुद्ध पहले से विद्यमान इन लोगों के भावों को और भी उत्तेजित कर दिया है।

पटना ज़िले के बाढ़ सब-डिवीज़न में, यह विदित हुआ था कि पटना से कुछ मिशनरी साइकिल पर वहाँ कई बार जा चुके थे और चमारों और दुसाधों को इकट्ठा करके उन्हें अपने धर्म्म में लेने के उद्देश्य से उपदेश कर चुके थे। वे उन्हें कहते थे कि यदि वे ईसाई बन जायेंगे तो वे शासक जाति के सदस्य बन जायेंगे और ज़मीदार को जो बेगार में देते हैं, वह बन्द हो जायगा। पुलीस उन्हें तंग नहीं करेगी। सवर्ण लोग उन्हें तंग नहीं कर सकेंगे। जब समाज को यह मालूम हुआ तो उसने अपने कार्यकर्त्ता वहाँ भेजें उन्होंने मिशन के प्रचारकों के खोखलेपन को खोल कर रख दिया और लगभग २० परिवारों की ईसाई धर्म में जाने से रक्षा की।

छपरा में क़रीब ३ या ४ महीने हुए, एक ईसाई मिशनरी गया और पुलीस सुपरिन्टेंन्डेन्ट के कम्पाउन्ड में उसने अपना डेरा खड़ा किया। वहाँ वह रोग से पीड़ित बहुत से हिन्दुओं को इकट्ठा कर लिया करता था और उनसे कहा करता था कि तुम लोगों के ईसा के नाम में कुछ शब्दों के उच्चारण करने से मैं पुराने से पुराने रोग को अच्छा कर सकता हूँ। इसका नतीजा यह हुआ कि धर्म भीरु बहुत सी स्त्रियाँ अपनी २ दुख कहानी लेकर उसके पास जाने लग गईं परन्तु यह ज्ञात होते देर न लगी कि ईसाई प्रचारकोंका भोलेभाले व्यक्तियोंको अपने दायरेमें लेजानेका यह एक तरीक़ा था।

वहाँ तथा गाज़ीपुर ज़िले में प्रगतियाँ अभी तक जारी हैं। यह नोट करने योग्य बात है कि शहरों और शिक्षित लोगों से बहुत दूर अशिक्षित लोगों में ये मिशनरी अपना काम कर रहे हैं जिससे इन लोगों द्वारा पड़ा हुआ बुरा असर जल्द दूर न हो जाय। यह आर्य समाज ही है जो इस गति को रोकने के लिए जितना वह कर सकता है यत्न कर रहा है।

गत वर्ष हज़ारी बाग़ ज़िले के मालदा स्थान पर जब आर्यसमाज के उत्सव के पहले दिन का प्रोग्राम ख़त्म हो चुका था। जब हम लोग प्रातःकाल का हवन कर रहे थे अचानक गावन वार्डस स्टेट के चपरासी आये और हमारे उत्सव पर आपत्ति की और कहा हम यह मैनेजर के आर्डर से कह रहे हैं। मैं स्वयं मैनेजर से मिलने के लिए गया और सहायक मैनेजर से बहुत देर तक बात चीत की जिसने बतलाया कि आर्डर के लिए मैनेजर ज़िम्मेवार हैं और कि वह बाहर गया हुआ है। पटना पहुँचकर मैंने मैनेजर को लिखा, उन्होंने मेरे उस पत्र के उत्तर में जिसमें मैंने मिलकर सब स्थिति स्पष्ट करने के लिए लिखा था मुझे निम्न उत्तर दिया।

"अजनबियों को लैक्चर देने की इजाज़त न देना इस स्टेट का असूल रहा है और मैं समझता हुँ इससे कुछ लाभ भी न होगा।"

हमें अभी तक यह जानना है कि ईसाई मिशनरियों पर 'अजनबी', शब्द लागू होता है या नहीं तथा उनका कार्य लाभकारी है या नहीं ?

स्थिति यह है—मैंने हिन्दू जनता के सामने बहुत सी बातों में से बहुत थोड़ी रक्खी हैं। आर्य्य प्रतिनिधि सभा तथा उसके अधीनस्थ समाजें अछूतों और निस्सहाय हिन्दू देवियों की रक्षा तथा उनकी अवस्था

सुधारने का पूरा यत्न कर रहा है। मैं प्रान्त के हिन्दुओं से अपील करता हूँ कि वह स्थितिकी भयंकरता अनुभव करें। मैं यह भी कहूंगा कि उन्हें आर्य्यसमाज को पूरा २ योग देना चाहिए।

हैद्राबाद(निज़ाम)राज्यमें आर्य्यसमाज का प्रचार (२८ अप्रैल १९३६ से २९ मई १९३५ तक)

उदगीर से श्री० पं० देवेन्द्र नाथ जी शास्त्री हैद्राबाद गए और पं० नरेन्द्र जी वैदिक मिशनरी आर्य्य प्रति-निधि सभा राज्य निज़ाम राज्य, तालू के कलम के प्रचार पर गए। वहाँ कई सरकारी पोलीस की रुकावटों का सामना करना पड़ा। तीन दिन तक बड़ी धूम-धाम से व्याख्यान हुवा और शंका समाधान भी किया गया। सैकड़ों की हाज़री होती थी। आर्य-लंगरमें लोग भोजन करते थे। वहाँ से माणिकनगर के मुक़दमे की पेशी के लिए सब हुमनाबाद के "मुसाफ़िर बंगले" पर उपस्थित हुए। तारीख़ बदल गई। वहाँ से मैं गुलबर्गा गया। वहां मेरे दो चार दिन व्याख्यान हुवे। पं० नरेन्द्र जी व श्री० गोविन्दराम जी भजनीक हैद्राबाद के अन्य महालों के उत्सवों में शरीक हुवे। जैसे कारवानसाहू, धूल पेठ इत्यादि। प्रतिदिन सायंकाल व्याख्यान और भजन हुआ करते थे। ९ मई से ११ मई तक आ० स० रायचूर का वार्षिकोत्सव था। श्री० पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री और श्री० गोविन्दराम जी भजनीक के भजन व व्याख्यान जनता के मन में वैदिक-धर्म की रुचि बढ़ाते थे। यह उत्सव बड़ी कामयाबी से समाप्त हुवा। इसके पश्चात् आ० स० निलंगा के वार्षिकोत्सव पर जो १४ मई से १७ मई १९३६ तक था सब जनता पहुँची। दस सहस्र के लगभग श्रद्धालु आर्य-भाई इस उत्सव पर पधारे थे। यह वही स्थान है जहाँ गत वर्ष तालुकेदार साहब बीदर की आज्ञा से समाज-मन्दिर ढा दिया गया था। अत्यधिक प्रयत्नों से वह आज्ञा रद्द करा दी गई थी। सरकारी ख़र्चे से पुनः मन्दिर बनवाया गया। ज़ब्त किया हुवा माल लौटा दिया गया। आर्य-समाज के प्रचार की आज़ादी मिल गई इसलिए इस प्रान्त में बहुत उत्साह बढ़ गया है। जङ्गल में एक विशाल पिण्डाल बनाया गया था। इसका मुख्य द्वार बड़ा शानदार था। एक ऋषि-लंगर खोला गया था। प्रतिदिन प्रातः सायं तीन २ सहस्र पुरुष भोजन किया करते थे। आर्य नवयुवकों का उत्साह काम करने की लगन प्रशंसनीय थी। इस उत्सव पर श्री० पं० विनायकरावजी विद्यालंकार, बार-ऐटलॉ प्रधान आ० प्र० नि० सभा नि० रा० व मंत्री प्र० नि० सभा व श्री० श्यामलाल जी वकील उप-प्रधान सभा व श्री० पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्य-तीर्थ व पं० नरेन्द्र जी आर्योपदेशक आ० प्र० नि० सभा व पं० रघो मदास जी ऑनरेरी उपदेशक आ० प्र० नि० सभा व वीरभद्र जी ऑनरेरी उपदेशक आ० प्र० नि० सभा व श्री० गोविन्दराम जी भजनीक व प्रह्लाद जी भजनीकने सभामें पधारकर उत्सव की शोभा बढ़ाई। ४ दिन तक प्रार्थना भजन उपदेश व शंका-समाधान व शाम से व्याख्यान व भजन होते थे। स्त्री-पुरुष बड़ी शान्ति से सुनते थे। शंका समाधान में निज़ाम राज्य के सनातन धर्म के मशहूर संस्कृत के शास्त्री गोविन्दाचार्य्य जी आकर शंका करते थे। शास्त्रीजी के विद्वत्तापूर्ण उत्तरसे निरुत्तर होजाते थे और उपस्थित जनता शास्त्रीजी की विद्वत्ता से बड़ी प्रभावित होती थी। मुकुन्दाचार्य्य जी ने कह दिया कि इस इलाक़े को आर्य्य-समाज ने जीत लिया है। यहाँ से

आर्य्य-समाज मोमिनाबाद के उत्सव पर श्री० पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री व पण्डित रघोत्तमदास जी व भजनीक गोविन्दराम जी पधारे थे। वहां भी तीन दिन तक खूब धूम-धाम के साथ प्रचार हुआ। नलगुंडा आर्य्य-समाज के सालाना जलसे पर श्री० पं० नरेन्द्र जी व श्री प्रह्लाद जी भजनीक गये और खूब प्रचार किया। निज़ामाबाद के वार्षिकोत्सव पर जो २७ मई से २९ मई तक था मैं व श्री० देवेन्द्र नाथजी शास्त्री व पं० नरेन्द्रजी व श्री० गोविन्दराम जी भजनीक गये। यहां का समाज स्थापित हुए तीन-चार मास हुवे मगर आर्य-भाइयों का पुरुषार्थ सराहनीय है। बड़े पुरुषार्थके साथ उत्सव मनाया। ख़ूब उपस्थिति रहती थी। प्रातः हवन, भजन, उपदेश, शंका समाधान और रात्रि में व्याख्यान होते थे। मुसलमान भाइयों ने भी शंकासमाधान में भाग लिया। इस प्रकार एक मास वैदिक धर्म प्रचार हुआ। रियासत भर में आर्य-समाज की चर्चा हो रही है और जनता आर्य-समाज के उच्चकोटि के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर आर्य-समाज के झण्डे के नीचे आना अपना सौभाग्य समझ रही है। इसके पश्चात् श्री० पं० देवेन्द्रनाथ जी सिकन्द्राबाद गुरुकुल व श्री० गोविन्दराम जी भजनीक अलीगढ़ चले गये। अब हमारे प्रचारक घूम २ कर नवीन समाजें स्थापित करने में लगे हैं। उनको रिपोर्ट जो आ रही हैं, उत्साह जनक हैं। आगे फिर कभी विस्तृत समाचारों को प्रकाशित किया जावेगा।

श्रद्धानन्द उपदेशक विद्यालय, रांची

श्री पं० धर्मवीर जी का दौरा

(सम्वाद दाता द्वारा)

सेन्ट्रल श्रद्धानन्द मिशन रांची की ओर से 'श्रद्धानन्द उपदेशक विद्यालय' का उद्घाटन समारोह गत मास २८ जून को श्रीयुत सुकुमार हलदार रिटायर्ड डिप्टी मजिस्ट्रेट रांची के सभापतित्व में हो गया था। इस उपदेशक विद्यालय में उराव, मुण्डा, सन्थाल आदि जातियों के मिडिल और मैट्रिक परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को उपदेशक बनाने की शिक्षा दी जारही है।

उपदेशक विद्यालय के आचार्य श्री पंडित धर्मवीर जी वेदालंकार, मन्त्री अखिल भारतीय स्वामी श्रद्धानन्द मैमोरियल ट्रस्ट जिन्होंने उक्त सोसायटी की ओर से उपदेशक विद्यालय को आरम्भ किया है श्री पं० देवव्रत जी अधिष्ठाता श्रद्धानन्द आश्रम खूण्टी के साथ मानभूम जिले के कुछ स्थानों का दौरा किया। श्री पं० धर्मवीर जी ने झरिया के कई प्रतिष्ठित महानुभावों से "श्रद्धानन्द उपदेशक विद्यालय" के लिये दान प्राप्त किया।

श्रीमान् रायबहादुर हरिप्रसाद जी बैनर्जी	१००)
श्रीमान् ला० बलीरामजी तनेजा	१००)
श्रीमान् सेठ अर्जुनदास जी अग्रवाल	१००)

इस समय उपदेशक विद्यालय के लिए पण्डित धर्मवीर जी ने ८००) एकत्रित किया है। झरिया के महानुभावों ने भविष्य में प्रतिवर्ष श्रद्धानन्द ट्रस्ट को पर्याप्त सहायता देने का विचार प्रगट किया है।

श्री पण्डित धर्मवीर जी ने डी० ए० वी० स्कूल झरिया के विद्यार्थियों में और आर्यसमाज में ओजस्वी भाषण दिए।

केरल (ट्रावनकोर)

गत मई मास १९२५ में केरल प्रान्तान्तर्गत ट्रावनकोर रियासत में निम्न लिखित स्थानों पर मौखिक प्रचार हुआ। यथाः—पोनकुन्नम्, चिरक्कड़व चेरुवेल्ली,

वेलूर, कोटिमता, काड़ेयं पड़ी, कड़कूरपट्टी, उलुवा कोट्ट-यम्, अतिरंपुला, आपूंकरा, मान्नानम् पांपाड़ी।

इसके अतिरिक्त वेल्लूर, मल्लूशेरी कुमारनेल्लूर, कोट्टयम, चड्डानाशेरी आदि स्थानों में जा २ कर कुछ व्यक्तियों से प्रचारक मिले—उन्हें आर्य-समाज के सहायक बनाने का यत्न किया गया। यहां यह बात स्मरणीय है केरल प्रान्त में नायरों को एक मुख्य स्थान प्राप्त है उन्होंने नायर समाज क़ायम कर रखा है। यह समाज लगभग ३५ वर्ष से काम कर रहा है। उसके जनरल सेक्रेटरी से प्रचारक मिले और उन्होंने आर्य-समाज के प्रति सहानुभूति प्रकट की है—

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का संक्षिप्त जीवन-चरित्र (छोटी सी पुस्तिका) लिखकर तैयार की गई। आर्य-समाज का परिचय दिलाने वाली एक पुस्तक प्रकाशित हो रही है लगभग आधी समाप्त हो चुकी है।

मद्रास प्रान्त में आर्यसमाज की प्रगतियां

सार्वदेशिक सभा के उपदेशकों का प्रचार कार्य

१ दो ईसाई परिवारों की शुद्धि की गई।

२ तीन वैदिक विवाह, १ चूड़ाकर्म तथा अन्य संस्कार कराए गए।

३ पैराम्बू में Aryan youth league की स्थापना की गई।

४ सेठ घनश्यामदास जी बिरला से प्रचारक मिले तथा उन्हें केरल की स्थिति और मद्रास में आर्य्य समाज का परिचय कराया।

५ Rejoinder to Xian Reply और Hindus Awake. शीर्षक दो ट्रैक्ट लिखे गए।

६ प्रचारक गएटूर प्रचारार्थ गए। परन्तु अति वर्षा के कारण तीन दिनोंमें वापिस लौटना पड़ा।

बिछुड़ों का मिलाप तथा रक्षा कार्य्य

—धार की एक वेश्या ने बंगलोर की एक राजाबाई नामक स्त्री को उसकी ३ लड़की और दो लड़कों सहित उड़ाया था। बड़ी लड़कियाँ क्रमशः ११ व ८ साल की थीं। उनके साथ वेश्या अपने दोनों लड़कों का निकाह गत ३० जून को करा रही थी। ऐन वक्त पर ख़बर पाकर और धार के अधिकारियों से मिलकर श्री लालाराम जी नामक एक सज्जन ने निकाह रुकवाया और राजाबाई तथा उसके बच्चों को हिन्दू-धर्म्म-रक्षिणी सभा के आश्रम में ले गए।

—बड़वाहा (होलकर स्टेट) में गत ३० जून को मोती लाला नामक एक हिन्दू की सधवा लड़की को आशिकअली गुण्डा भगा ले गया। उसे शराब पिलाकर उससे पुलिस में रिपोर्ट भी करादी कि मुझे मेरे माँ बाप खाने को नहीं देते अतः खुशी से इसके साथ आई हूँ। दूसरे दिन लड़की को मुस्लिम होटल में खाना भी खिलाया गया। इतने में ख़बर पाकर हि० ध० र० सभा के कार्यकर्ता पहुँच गए और गुण्डे से लड़की को छुड़ा लिया। लड़की का नाम यमुनाबाई है।

—५-७-३६ को आर्य्य समाज चन्द्रधरपुर में अमरावती निवासी २८ वर्षीय मौरिस नामक एक गांव के ईसाई की शुद्धि हुई।

—रामायण शुद्धि सभा फ़ख़रपुर (बहराइच) ने ३० जून को होली रामलोध नामक व्यक्ति की शुद्धि की। इसकी आयु इस समय ३० साल की है जब यह ६ महीने का था इसकी मां मुसलमान हो गई थी। इस शुद्धि में पौराणिक भाइयों ने भी भाग लिया।

—२१-६-३६ को बिस्मिल स्त्री पं० तोताराम जी रायकैथल निवासी की पुत्री बिस्मिल को जो लगभग २ वर्ष से मुसलमान हो गई थी आर्य स० चन्दौसी ने शुद्ध किया।

—गत १७ जून को २ हिन्दू स्त्रियाँ तथा २ साल की लड़की एक मुसलमान तांगे वाले के चंगुल में फंस कर उतरौली में मुसलमान होने के लिए जामामस्जिद जाने वाली था। यह समाचार मालूम होने पर आर्य कुमार सभा के सदस्यों ने उनकी रक्षा की। एक को उसके घर भेज दिया दूसरी को बा० राम नाथ मेम्बर ने अपने गांव भेजकर उसके भोजन आदि का उचित प्रबन्ध कर दिया।

—१६ जून को आ० स० खतौली (मुजफ्फरनगर) में एक नवमुस्लिम स्त्री की शुद्धि की गई।

—ता० २० । ९ । ३६ को चांदुर रेल्वे में एक हिन्दू धर्म की अबला अपने ३॥ महीने के दुधमुहे बच्चे को केवल समाज के डर से मुसलमान अथवा ईसाई विधर्मियों को हवाले करने को उद्यत थी परन्तु उसी अवसर पर यहां के आर्यसमाज के प्रधान श्री बातकर ने उसे समझाकर ऐसा करने से विमुख किया और उस बच्चे को आर्यसमाज के मार्फत नागपुर अनाथालय में स्थान दिलवा दिया इस प्रकार एक दुधमुहे बच्चे को दूसरे धर्म में

जाने से बचाया और उसका यथोचित बंदोबस्त करवा दिया।

मारूतीराम जी
मंत्री, आर्यसमाज चांदुर रेल्वे

—जौन डेविड साठे नाम के ईसाई पादरी चांदा में रहते हैं। वे पहले महाराष्ट्र कोंकणस्थ ब्राह्मण थे। उनकी तीन कन्याओं की शुद्धि पण्डित श्री ओंकारदत्तजी के प्रयत्न से वर्धा में की गई।

सबसे बड़ी कन्या लीलावती साठे (उम्र २४ वर्ष) की शुद्धि २१-५-३६ को हुई। वह मराठी तथा अंग्रेज़ी मिडिल तक पढ़ी है और टीचर्स ट्रेनिङ्ग पास है। शुद्धि के उपलक्ष में भोज भी हुआ, जिस में लगभग १२५ व्यक्ति उपस्थित थे। युवती का नाम विद्यावती साठे रखा गया है।

द्वितीय कन्या सुशीला साठे (उम्र २१ वर्ष) और तृतीय कन्या सुदीना साठे (उम्र १९ वर्ष) की शुद्धि १४-६-३६ को हुई। उनके नाम सावित्री और सुमिता क्रमशः रक्खे गये ।

शुद्धि के समय बड़ी बहिन ने एक लिखित भाषण दिया था। उनके भाषण में धर्मानुराग झलकता था। उन्होंने वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की उच्चता स्वीकार कर ईसाई धर्म की कमज़ोरियों को बतलाते हुए अपने को वैदिक धर्म में प्रविष्ट करने में सौभाग्यशालिनी बतलाया। दो छोटी बहिनों की आत्म कहानियाँ ध्यान से पढ़ने योग्य हैं।

(१) श्री सुशीला साठे कहती हैं:—

मैं ईसाई कुलोत्पन्न हूँ। मेरी शिक्षा छठवीं मराठी और दूसरी अंग्रेज़ी तक हुई है। मैं अध्यापिका का कार्य कर चुकी हूं। नौकरी छूटने के बाद मैं चांदा में रहने लगी। मैं विवाह के योग्य हो चुकी थी। एक जवान आदमी मेरे घर आने जाने लगा। और उसने अपने को ईसाई कहा। धीरे २ मेरे साथ विवाह की बातचीत करने लगा। मैं भी गुप्त रीति से उसमे प्रेम करने लगी। हिन्दुस्तानी ईसाइयों ने जो अंग्रेज़ी के कोर्टशिप की नकल की है उसका परिणाम यह हुआ कि मैं गर्भवती होगई। मैंने अपने कोर्टशिप करने वालों को अपने गर्भ की बात बतलाई। उस समय नीच पापी ने यह कहा कि वह मुसलमान है और अगर मैं भी मुसलमान हो जाऊँ तो वह मेरे विवाह का प्रबन्ध कर देगा। यह सुनकर मैं पागल सी हो गई। मैंने मुसलमान होने से इन्कार कर दिया। और इस चिन्ता में पड़ गई कि संसार में अपना मुँह कैसे दिखलाऊँगी। मैं अपने कुटुम्बीजनों से अलग रहने लगी और मैंने अपने गर्भ की रक्षा की। वह पापी बारबार मेरे पास आता और हर तरह की धमकी देता और मुसलमान होने को कहता, लेकिन मैं किसी प्रकार भी मुसलमान होने को तैयार नहीं हुई। समय पर मेरे एक लड़की पैदा हो गई मेरी उम्र लगभग २० साल की है।

मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि चांदा ज़िले में एक आर्यसमाजी जिनका नाम पं० ओंकारदत्त जी सेवक हैं, शुद्धि का काम कर रहे हैं। मैंने अपने दिल को खूब मजबूत बनाया और इनसे माह फ़रवरी १९३६ में मैं चांदा में मिली मैंने अपना सब सच्चा हाल उनसे कह दिया उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाया कि वे मुझे शुद्ध कर लेंगे और जीवनको ऊँचा बनाने का मौका देंगे। उन्होंने कहा कि तुम दुःख के कारण शुद्ध मत हो बल्कि वैदिक

जीवन व्यतीत करने के लिए, अपने मन को तैयार करो। मैं अपने मन को तैयार करती रही और अपने मनको तैयार करनेके बाद ता० ७-६-३६ को वर्धा में अपनी शुद्धि कराने के लिए आगई हूं।

(२) श्री सुदीना साठे की कथा इस प्रकार है:—

मैं ईसाई कुलोत्पन्न हूँ और मेरे पिता साठे कुलोत्पन्न होने के कारण हम लोग आज दिन भी अपने नाम के आगे साठे लिखते हैं। दक्षिण में जितने ऊँची जाति के हिन्दू ईसाई हो जाते हैं वे अपना आड़ नाम अपने नाम के आगे रखते हैं। मैं मराठी चौथी तक पढ़ी हूं।

मेरा बाल काल उत्तम रहा। परन्तु जब मैं ब्याह के योग्य हुई तो मेरा विवाह जॉन बाला जी पटेल के साथ हुआ। वह जी० आर० पी० रेलवे में फीटर का काम करता था। और बल्हारशाह जकरान स्टेशन पर रहता था। विवाह के बाद वह मुझे लेकर बल्हारशाह आया। वहाँ आकर मैंने क्या देखा कि वह एक दूसरी औरत जो परधानिन थी उसके साथ प्रेम करता है। मैंने अपने पति से उसको त्याग देने को कहा। परन्तु उसने मुझे मारना पीटना शुरू कर दिया। उसके मुसलमान दोस्त थे। वह एक को अपने साथ लाता और उसे मेरे साथ घर में बन्द कर देता। मैं कमजोर स्त्री, गुण्डों का मुकाबला कहाँ तक करती। आखिर एक दिन मेरे पति ने मुझे घर से निकाल दिया। मैं हिंगनघाट आगई क्योंकि मुसलमान जबरदस्ती मुझे मुसलमान बनाना चाहते थे और मेरा पति भी चाहता था कि मैं मुसलमान हो जाऊँ।

हिंगनघाट आने पर भी मुसलमानों ने मेरा पीछा किया और एक ने कपटरूप धरके मुझे वहाँ छला और बहका कर नागपुर ले आया। मुझे एक हिंदू ने उसके जालसे छुड़ाया। उनकी स्त्री धोलपुर जाने वाली थीं। मैं मुसलमानों से बहुत डरती थी। मैंने उनसे कहा कि वह मुझे अपने साथ ही ले चलें। वह मुझे अपने साथ धोलपुर ले गई वहाँ उनके पास रहकर मैंने हिंदु-धर्म की बहुत-सी अच्छी बातों को जाना। मेरा मन हिन्दू होने का होने लगा। वहाँ से मैं अपने पिता के घर आई। और अपना सब हाल उनसे कहा और यह भी कहा कि मैं हिन्दू होना चाहती हूँ। मेरे माता पिता ने मुझे कहा कि तुम वर्धा पं० ओंकारदत्त जी के पास जाओ। तुम्हारी बड़ी बहिन हिन्दू हो गई है, और वह उन्हीं के पास है, उन्होंने मुझे वर्धा मेरे भाई के साथ भेज दिया और मैं यहाँ ता० ७-६-३६ को आ गई हूँ। ता० १४-६-३६ —सुदिना साठे

(आर्य्य सेवक)

महिला-जगत [सम्पादिका—श्रीमती विद्यावती 'विशारदा']

क्या पढ़-लिखकर लड़कियां कुमारी ही रहेंगी ?

(ले०—कुमारी गोपालदेवी जी 'प्रभाकरा')

किसी युग में आर्य-जाति गुणों का सम्मान करती थी, इसलिए उस समय जातिका प्रत्येक व्यक्ति गुणवान् होकर ही उज्ज्वल होना चाहता था। प्रत्येक मनुष्य (स्त्री हो वा पुरुष) अपना साथी भी गुण-कर्म-स्वभावानुसार ही खोजता था। गुणों के सम्मुख अन्य धन-सम्बन्धी प्रलोभन अधिक श्रेयस्कर प्रतीत न होते थे। इस कारण माता-पिता सन्तति को योग्य बनाना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे। सन्तान को सुशिक्षित बना तदनुकूल वर या कन्या प्राप्त करने में उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न होती थी।

'स्वयंवर' का अभिप्राय यही है कि कन्या स्वयं अपने गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर चुने। ऐतिहासिक ग्रन्थों के अवलोकन से भी यही पता लगता है कि सीता, सावित्री, दमयन्ती और द्रौपदी आदि जितनी पति-परायणा रमणियां हुईं, उन्होंने स्वयंवर द्वारा ही अपना पति चुना। सैकड़ों राजकुमार एक कुमारी को ब्याहने के लिये लालायित रहते थे। इसी कारण से माता-पिता को कन्या के विवाह करने की समस्या कठिन प्रतीत न होती थी। गुणों का प्राधान्य होने से राजकुमारी सावित्री सत्यवान् को, ऋषि-कन्या शकुन्तला राजा दुष्यन्त को प्राप्त हुई। अभिप्राय यह कि वर्त्तमान समय की दहेज़ आदि कुप्रथाएँ उस समय उपस्थित ही न होती थीं। केवल गुणों की ही प्रधानता थी।

ज्योंही पौराणिक युग का आरम्भ हुआ, स्वार्थी नाम-धारी-ब्राह्मण पण्डों के हाथों में अधिकार आए। जन्मानुसार वर्ण-व्यवस्था मनवाने के अतिरिक्त उन्होंने और भी अधिकार छीने। "स्त्री शूद्रौनाधीयाताम्" आदि श्लोक बनाकर और भी अत्याचार करने प्रारम्भ किए। धीरे-धीरे उनकी सन्तति में विद्या का अभाव दिखाई देने लगा। स्त्री-जाति शिक्षा से सर्वथा वञ्चित रक्खी गई। मूर्खा लड़कियों के होने से स्थान-पूर्ति के लिए दहेज़ आदि कुप्रथा आरम्भ हुई।

मुसलमानों का राज्य आरम्भ होते ही आर्य-जाति पर पाशविक अत्याचार होने लगे। जाति को सुरक्षित रखने के लिये आर्य दुधमुँही बच्चियों के विवाह करने लगे। उस समय यह अवस्था जाति-रक्षा के के निमित्त किसी अंश में लाभदायक थी। इस आपत्कालीन प्रथा ने शनैः शनैः धर्म का रूप धारण कर लिया। मुसलमानी युग के व्यतीत हो जाने पर भी, जब इस प्रथा की आवश्यकता नहीं रही, तो भी यह आर्य-जाति से पूर्ववत् चिमटी रही, और घुन की तरह खाने लगी।

इसके पश्चात् भगवान् दयानन्द का युग आया। स्त्री-जाति का भाग्योदय हुआ। सैकड़ों वर्षों से जो शिक्षा का द्वार बन्द था, वह उनके लिए खुल गया। लोग कन्याओं को पढ़ाने लगे; परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से इस शिक्षा के साथ एक और जटिल समस्या उपस्थित हो गई। दरिद्र भारत के दरिद्र पिता ऋण लेकर भी अपने पुत्रों को पश्चिमी ढङ्ग पर शिक्षा देने लगे। उस ऋण का प्रतिकार लड़के के विवाह के समय लड़की वालों से मांगा जाने लगा।

इसका परिणाम यह हो रहा है कि लड़के की शिक्षा के अनुसार विवाह-मार्केट में उसकी क़ीमत आँकी जाती है। परिवार, कुलीनता, स्वभाव और गुण सब गौण हो गए हैं। जिस कन्या का पिता विवाह-मण्डी में सब से अधिक बोली देता है, उसी से कन्या स्वीकार की जाती है। कैसा जघन्य दृश्य है !! पौराणिक काल में स्त्री-शिक्षा का द्वार बन्द था, परन्तु इस धन के युग की अपेक्षा उसमें स्त्रियों का अस्तित्व तो क़ायम था; परन्तु आजकल लड़कों का 'विवाह हो जाने पर भी यदि कहीं से अधिक धन मिलने की आशा होती है तो वह पहली स्त्री को त्याग कर दूसरा विवाह कर लेते हैं। इस प्रकार की कई एक घटनाएँ मेरे देखने में आई हैं।

एक इञ्जीनियर साहब की दो सुपुत्रियां थीं। समस्त सम्पत्ति की अधिकारिणी भी यही थीं। पिता ने बड़ी कन्या को 'मिडिल' क्लास तक शिक्षा दी। लड़की के १६ वर्ष ही होने पर पिता को उसके विवाह की चिन्ता हुई। कई लड़कों ने अपने आप को प्रस्तुत किया। सब की शर्तें यह थीं कि विलायत का ख़र्च मिलना चाहिए। पिता ने वात्सलय-स्नेहवश हो किसी एक की शर्त स्वीकार कर ली। साधारण परिवार के बी० ए० पास लड़के से लड़की का सम्बन्ध निश्चित हुआ। मँगनी के दिन २५ पाउण्ड (गिन्नियां) दिए गए। दो मास पीछे बड़े समारोह से विवाह हुआ। पन्द्रह-बीस हज़ार का दहेज़ दिया गया। थोड़े दिनों पश्चात् दामाद ने श्वसुर से विलायत जाने का ख़र्च माँगा। लड़का इञ्जीनियरिङ्ग के लिए विलायत चला गया। तीन वर्ष तक पत्नी और श्वसुर को बड़े प्रेम की चिट्ठियाँ आती रहीं। जब पढ़ाई समाप्त हुई, तो उनके श्वसुर के आनन्द की सीमा न रही; परन्तु विधाता ने कुछ और ही दिखाना चाहा ! बहुत दिन तक दामाद की चिट्ठी नहीं आई। परिवार चिन्तातुर होने लगा। चिट्ठियाँ भेजी गईं; तार दिए गए; आने का ख़र्च भी भेजा गया, तब दामाद की चिट्ठी आई कि आप अपनी लड़की को टेनिस, बैडमिन्टन आदि की शिक्षा दिलाएँ। पिता ने 'तथास्तु' कहकर वैसा ही किया। एक वर्ष पीछे दामाद को चिट्ठी लिखी कि लड़की सब-कुछ सीख चुकी है, आप भारत लौट आएँ। तब दामाद महोदय ने उत्तर दिया—मैं आपके किए उपकारों के लिए कृतज्ञ हूँ, परन्तु आने के लिए असमर्थ हूं क्योंकि एक वर्ष हुआ मेरा विवाह यहीं एक इङ्गलिश महिला से हो गया है।

यह पढ़ते ही लड़की के पिता मूर्च्छित हो गिर पड़े। माता और पुत्री के हृदय पर तो वज्र ही गिर पड़ा। लड़की को हिस्टीरिया के फ़िट आने लगे। इसके साथ ही ज्वर होने लगा। उपरोक्त घटना के छः महीने पीछे इसी दुःख से वह पति-परायणा देवी मत्सरमय जगत् को लात मारकर स्वर्ग को चली गई।

इस प्रकार की कई घटनाएँ नित्य सुनने तथा देखने में आती हैं, जिन्हें सुनकर रोमाञ्च हुए बिना नहीं रहता। देश की अवस्था प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। इस वायु का झोंका बड़े वेग से बह रहा है। अगर यही अवस्था रही, तो मैं आर्य्य-जाति से पूछती हूँ कि बङ्गाल-निवासिनी स्नेहलता की भाँति पञ्जाब की कुमारी कन्याओं को आत्म-हत्या करनी होगी अथवा पढ़-लिखकर आजन्म कुमारी ही रहना पड़ेगा ? इसका उत्तर कौन देगा ?

———

सार्वदेशिक सभा की सूचनाएँ

मैं चातुर्मास में अपनी पहाड़ी कुटी रामगढ़ में रहकर लिखने पढ़ने आदि का काम किया करता हूँ। इस काल में बाहर कहीं प्रचारार्थ नहीं जाया करता—यह बात प्रायः आर्य जगत जानता है परंतु फिर भी अनेक पत्र वेद प्रचार सप्ताह में कथा करने और इसी काल के मध्य अन्य अवसरों पर प्रचार करने के लिये आर्य जगत के अधिकारी भेज दिया करते हैं। मुझे उनका एक मात्र निषेध परक उत्तर देना पड़ता है। मैं समझता हूँ कि यह काम अनावश्यक मुझे करना पड़ता है इस लिए मैं आर्य जगत के अधिकारी गण से प्रार्थना करता हूँ कि वे उन मासों में मेरे पास कृपा करके पत्र न भेजा करें अन्यथा मुझे उनका उत्तर न देने के लिए बाधित होना पड़ेगा। नारायण स्वामी

❀ * ❀

सार्वदेशिक सभा की आर्य रक्षा समिति के सहायक मन्त्री श्री बाबू शिवचन्द्र जी का दौरा

गत मई मास में सहारनपुर, रुड़की, बहादराबाद तथा जून जुलाई मास में गाज़ियाबाद, मुजफ्फरनगर शहर, मेरठ सदर, मेरठ लालकुर्ती तथा कंकर खेड़ा समाजों में मैंने आर्यवीर सेवादल स्थापनार्थ दौरा किया। प्रसन्नता है सहारनपुर, ग़ाज़ियाबाद, मेरठ सदर तथा मेरठ लालकुर्ती समाजों में सेवा दलों का संगठन हो गया है।

कंकर खेड़ा समाज अभी नई स्थापित हुई है। इसके सन्मुख आजकल अपना समाज मन्दिर बनाने की स्कीम है। इस समाज के अधिकारी तथा सदस्यों ने विश्वास दिलाया है कि जैसे ही उनकी समाज का मन्दिर बनकर तैयार हो जायगा वैसे ही वे लोग सेवा दल की स्थापना अपने यहां कर लेंगे।

अन्य समाजोंमें युवक-संगठन के भावके अभाव के कारण सेवादल काफी यत्न करनेपर भी स्थापित नहीं हो सके परन्तु भविष्य के लिए क्षेत्र तैयार हो गया है। आशा है यह सब समाजें युवक संगठन की ओर विशेष ध्यान देंगे।

❀ ❀ ❀

दान सूची सार्वदेशिक सभा बाबत मासजून जुलाई

९) श्री बा० मेहर चन्द्र जी पुरी (दान)
४००) श्री सेठ जुगल किशोर जी बिरला ,,
४)श्रीमती चन्द्रीबाई जी द्वारा म० पन्नालाल राम नारायण जी नेत्र वैद्य हिंगोली (निज़ाम राज्य) (दान)
४॥) आ० स० लालकुर्ती मेरठ (आर्य समाज स्थापना दिवस)
२५) ,, ,, बैंकौक (स्याम) ,,
५) आ० स० काशी सिटी ,,
१५) आ० स० चौक इलाहाबाद ,,

४६२॥) दान दाताओं को धन्यवाद।

कोषाध्यक्ष
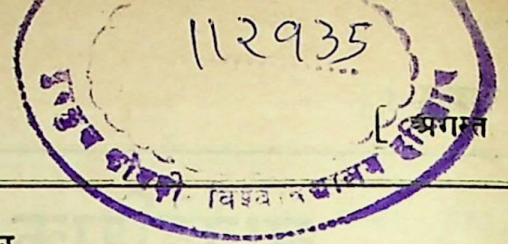
आर्य-वीर सेवा दल

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की योजनानुसार श्री० बा० शिवचन्द्र जी, सहायक मन्त्री आर्य रक्षा समिति, मेरठ नगर में आर्य वीर सेवा दल को संगठित करने के हेतु पधारे। उनके परिश्रम के फल स्वरूप लालकुर्ती में आर्य वीर सेवादल का निर्माण हुआ, जिसकी प्रथम बैठक बा० नन्दकिशोर जी दुबलिश M.A के सभापतित्व में हुई। पदाधिकारियों के निर्वाचन के पश्चात सामयिक भावी कार्य क्रम पर विचार हुआ और निश्चय किया गया कि—

(१) जनता की शारीरिक उन्नति के हेतु अखाड़े का प्रबन्ध किया जाय जिसमें गदका, मुदगरादि का आयोजन हो।

(२) न्यून से न्यून माह में १ बार आर्यवीर निकटवर्ती ग्रामों में जाकर ग्राम सुधार संबन्धी सेवायें करें।

(३) स्थानीय कलक्टर महोदय से 'मैजिक लैंटर्न' के लिए प्रार्थना की जाय, जिससे ग्रामीणों को स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा दी जा सकें।

(४) नवयुवकों को व्याख्यान एवं लेखों द्वारा आर्य सिद्धान्तों की ओर आकर्षित किया जाय, और उनके आचरण तथा नियंत्रण पर विशेष ज़ोर दिया जाय।

(५) प्रत्येक आर्य वीर आर्य-भाइयों में प्रेम और भ्रातृभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न करे, और मनुष्य मात्र की सेवा करने को तत्पर रहे।

श्री बा० शिवचन्द्र जी को उनके कार्य में पूर्ण सफलता मिली है। नवयुवकों में एक नवीन उत्साह और नवीन स्फूर्ति का संचार हो रहा है और वे दल के सदस्य बनाने को अत्यन्त लालायित हैं।

हरिदत्त शर्मा
वैदिक धर्म विशारद
मन्त्री, आर्यवीर सेवा दल लालकुरती मेरठ।

पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये 'चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस' देहली, में प्रकाशित।